कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 18, Issue 70
April – June, 2021

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER :
Dr. Sneh Thakore – Awarded By The President Of India

सम्पादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत

वर्ष १८ - अंक ७०, अप्रैल - जून २०२१

हिन्द महासागर पर

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

उड़ा हूँ –
कितने ही द्वीपों-महाद्वीपों पर
आकाश की ऊँचाई छूने को.

और उतरा हूँ गहरे
किसी अंतस में
सागरों-महासागरों में.

किन्तु कितना अच्छा लगता है
अपने आकाश को छूना
अपने महासागर में गहराना
द्वीप-द्वीपान्तरों की यायावरी में खो जाना
अपने क्षितिज में
अपने आपको पा जाना.

वसुधा

सम्पादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
अच्छा लगता है	डॉ. रमेश पोखरियाल “निशंक”	३
सूरज और दीपक	अभिषेक त्रिपाठी	४
गीता सार	अविनाश कुमार	५
उसने पढ़ा नहीं, उसने सुना	भावना सक्सैना	७
ऊँचाईयाँ	डॉ. हंसा दीप	८
मुक्तक	सुभाष ऋतुज	१२
मुक्तक	सुधेश	१३
विश्व को दर्शन देने वाले पण्डित दीनदयाल उपाध्याय	प्रभात झा	१४
मैं से युद्ध	डॉ. मुक्ता	१७
मूल्य-शिक्षा प्रसार में महिलाओं की भूमिका	पद्मश्री डॉ. रवीन्द्र कुमार	१८
वह चली कँटीली राहों पर	डॉ. संदीप अवस्थी	२०
हरिद्वार कुम्भ २०२१	डॉ. विदुषी शर्मा	२१
तुम्हें लिखने में	धर्मपाल महेन्द्र जैन	२९
विश्व पटल पर हिंदी एवं भारतीय संस्कृति	डॉ. मीना यादव	३१
अनहोनी शाम	डॉ. उमानाथ तिवारी	३२
मन का भरम	शन्नो अग्रवाल	३३
जागृति	डॉ. स्नेह ठाकुर	३४
हर कोई है चाहता	कुमार सत्यम	४३
तुम पर कोई गीत लिखूँ	धीरज श्रीवास्तव	४४
हिन्द महासागर पर	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com, kavitakosh.org/vasudhapatrika

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

वसुधा पत्रिका किसी एक देश-प्रदेश की नहीं बल्कि समस्त विश्व की है. इसकी सम्पादक होने के नाते मैंने वसुधा के राम पर, विश्व नायक राम पर, "लोक-नायक राम" जैसे ग्रंथों का प्रयणन किया है. और अन्य पुस्तकों के साथ ही साथ श्रीराम कथा के अन्य पात्रों पर – "कैकेयी चेतना-शिखा", "श्रीरामप्रिया सीता" तथा "दशानन रावण" आदि पर भी लिखने का सुअवसर प्राप्त किया है.

इसी बीच मेरी चर्चा बड़े भाई पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि जी से हुई तो उन्होंने बताया कि उन्होंने भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम पर एक ग्रन्थ लिखा है जिसका शीर्षक बड़ा विलक्षण है – "भारतीय संविधान, संस्कृति एवं रामराज्य" (गाँधी दर्शन व नन्दलाल बोस के रेखा-चित्रों सहित). इस शीर्षक में सर्वाधिक आकर्षित किया नन्दलाल बोस के चित्रों ने जिन्हें वर्ष १९५० में प्रकाशित संविधान के महाग्रंथ में सम्मिलित किया गया था. उल्लेखनीय है कि भारत का संविधान उस वर्ष लोक सभा द्वारा पारित किया गया था. संविधान के २२ भागों में राम, सीता और लक्ष्मण का पुष्पक विमान द्वारा श्रीलंका से अयोध्या आगमन का चित्र भाग तीन के उर्ध्व स्थल पर प्रकाशित है तथा अन्य भागों में श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए, गुरुकुल, शिव वाहन नंदी, गंगावतरण, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, विक्रमादित्य तथा अन्य ऐतिहासिक रेखाचित्रों में शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, नेता जी सुभाषचंद्र बोस, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, महात्मा गाँधी, राजभाषा भाग १७ में रामराज्य की लकुटिया थामे हैं. पुस्तक में दो चित्र मुग़ल काल के भी हैं जिनमें अकबर का दरबार तथा टीपू सुल्तान हैं. ग्रन्थ में कुछ भारतीय संस्कृति के अन्य प्रतिनिधि रेखाचित्र भी हैं. शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ के वरिष्ठ रेखाचित्रकार नन्दलाल बोस और उसकी टीम को यह काम प्रकाशनार्थ सौंपा गया था, किन्तु बाद में संविधान के न तो किसी पाठ्य-पुस्तक में ये चित्र देखने को मिलते हैं और ना ही किसी प्रकाशक द्वारा सन्दर्भ-ग्रन्थ में. लेखक ने इन प्रश्नों के उत्तर भारतीय मनीषा के समक्ष प्रस्तुत किए हैं.

प्रसन्नता का विषय है कि यह पुस्तक अगले मास तक प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुँच जाएगी. प्रसंगत: उक्त चित्र सभ्यता संस्कृति पत्रिका के विगत अंक में भी प्रकाशित हुए हैं जो डॉ. शशि की पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर छपे हैं जिन्हें मैं इस पृष्ठ पर भी दे रही हूँ.

पुस्तक प्रकाशन से पूर्वमेव शशि जी का हार्दिक अभिनन्दन. हिंदी व अंग्रेजी में ५०० पुस्तकों के लेखक तथा दोनों भाषाओं में पद्मश्री से अलंकृत अग्रज डॉ. श्याम सिंह शशि जी को हार्दिक बधाई.

शशि जी की इस बहु-चर्चित पुस्तक के कुछ रेखा-चित्र .... सस्नेह .... स्नेह ठाकुर

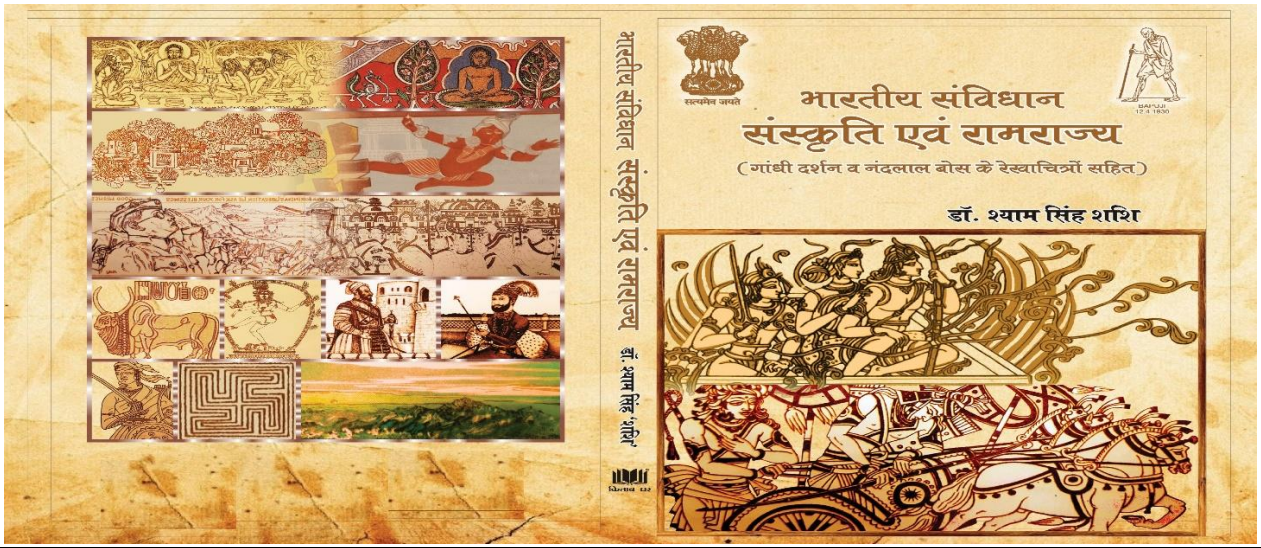

अच्छा लगता है

डॉ. रमेश पोखरियाल "निशंक"
(माननीय शिक्षा मंत्री)

कभी-कभी अच्छा लगता है,
चुप-चुप करके रहना.
और कभी अच्छा लगता है,
आँसू का छिपकर बहना.

यह भी अच्छा लगता है,
हर घूँट पीड़ा का पीना.
और सदा अच्छा लगा है,
मुझको यह जीवन जीना.

सूरज और दीपक

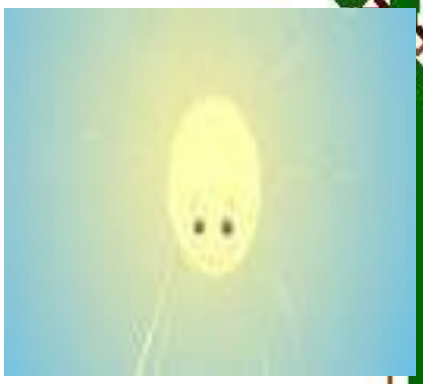

अभिषेक त्रिपाठी

सूरज कहता धन्य दीप तुम,
धन्य तुम्हारा त्याग से नाता
जब मैं चलकर थक हूँ जाता,
दीप तब अपना तन पिघलाता।

बना तेल बाती की सेना,
चल पडते हो तान के सीना
जलते हो कर्तव्य भाव से,
जाना नहीं स्वार्थ में जीना।

महलों के ऊचे कंगूरे,
गाँव में हो मिट्टी के धूरे
सजग खड़े तुम रात्रि के तट पर,
सदा तमस से द्वंद अधूरे।

तुमसे हैं जग का उजियारा,
अंधकार तुमसे ही हारा
देख तुम्हारी अथक साधना,
मन मैंने भी तुम पर वारा।

मैं रश्मि के रथ पर हूँ सवार,
दिव्य मिला मुझको आकार
पर मैं रहूँ गगन तक सीमित,
धरा ना करता अंगीकार।

सदा किन्तु मैं निश्चित रहता,
संशय कभी ना कोई गुनता
धरा से जब मैं ना मिल पाता,
तम तुमसे तब है घबराता।

माटी से जन्म ले दीपक,
धरा पर अपना सूर्य बनाता
जलकर देता स्वयं की आहुति
दीपक कोटि सूर्य बन जाता।।

गीता सार

{अध्याय ०२ – सांख्य योग}

अविनाश कुमार

इस अध्याय में कृष्ण अर्जुन को एक योद्धा के धर्म से परिचित कराते हैं, कर्मयोग की परिभाषा देते हैं, स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हैं और इंद्रियों को वश मे कर शांति कैसे प्राप्त की जाती है, यह उपदेश देते हैं।

संजय - देख अर्जुन की आँखों से, बहती अश्रु धारा
मधुसूदन ने व्यथित पार्थ को, गीत मे दिया इशारा | (०१)

कृष्ण - हे अर्जुन, युद्ध के दिन तू, मोह क्यूँ गले लगाए
कर्म त्याग कर हे नादान, यश और स्वर्ग गवाएँ | (०२)

कृष्ण अर्जुन से परिहास कर रहे हैं कि यह तो परीक्षा के दिन के विद्यार्थी जैसा हाल है |

अर्जुन - हे कान्हा! किन हाथों से मैं, भीष्म-द्रोण को मारूँ
जिनकी अपने मन मंडल में अपने, आरती नित्य उतारूँ | (०४)
यद्यपि प्राप्त मुझे हो वैभव, धन और तीनों लोक
किन्तु एक उपाय न सूझे, जो दूर करे ये शोक | (०८)
इस प्रकार अर्जुन ने अपने दुख का किया बखान
युद्ध नहीं करूँगा मैं, यह निश्चित है भगवान | (०९)

कृष्ण - शोक-अयोग्य परिजनों का तू, व्यर्थ रुदन है करता
मृत, अमृत का शोक तो कोई ज्ञानी भी नहीं बरता | (११)
मैं, तू या ये लोग नहीं थे, न था ऐसा काल
और आगे भी कल न होंगे, व्यर्थ है ये सवाल | (१२)
बचपन, यौवन और बुढ़ापा, इसी देह को मिलते
नया शरीर मिलने की ऋतु में, हम व्याकुल क्यों होते | (१३)
जैसे तज के वस्त्र पुराने, नए देह सज लेती है,
वैसे ही एक अंग नवेला, आत्मा धर लेती है | (२२)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक: |
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत: ||

क्या शस्त्र कोई काटेगा इसको, क्या अग्नि इसे जलाये,
न जल से भीगे आत्मा, हवा सुखा न पाए | (२३)
चुन तू अपने धर्म को अर्जुन, भय को दे तू त्याग
धर्म युद्ध ही लक्ष्य है तेरा, धर्मयुद्ध ही भाग्य | (३१)
धर्म युद्ध से हो कर जाता, तेरे मोक्ष का द्वार,
कोई-कोई क्षत्रिय ही पाता, ऐसा भाग अपार | (३२)
फिर भी यदि तू युद्ध त्याग कर, भय से करता प्रीत
तेरे साथ ही लुप्त रहेगी, यश और तेरी कीर्ति | (३३)

अब तक मैंने ज्ञान दिया, अब सुन **कर्म की बाणी**
कर्म-अकर्म के बंधन को, तज दे तू अज्ञानी | (३९)
कृष्ण ने कर्म रूपी शस्त्र से अर्जुन के मन को भेदना प्रारम्भ किया |
कर्म के मूल का नाश नहीं है, न ही फल में रोग
जन्म-मरण के भय अछूता, है ऐसा कर्मयोग | (४०)
अर्थात, जन्म लेते ही जीव कर्म के बंधन से बँध जाता है, और केवल निष्काम कर्म करना ही उसकी नियति है।
कर्म तेरा अधिकार है, न फल का करो विचार
और कर्म न करने हेतु, कभी रहो तैयार | (४७)
जिस तरह कछुआ कुछ छूते, निज में सिमटा जाए
स्थित प्रज्ञ प्राणी को भी, सुख-दुख न छू पाये | (५८)
भोग त्याग से केवल न कोई, स्थित प्रज्ञ कहलाता
आसक्ति न त्यागे जब तक, मोक्ष नहीं मिल पाता | (५९)
इच्छा जन्म दे आसक्ति को, और जगाए कामना
पूर्ण न होवे कामना तो, क्रोध से होता सामना | (६२)
क्रोद्ध जन्मता अंध अहम् को, अहम् भ्रम फैलाये
भ्रम नष्ट करे जो बुद्धि, जीव पतन हो जाए | (६३)
जो अपनी इच्छाओं का, इंद्रियों का परित्याग करे
वही स्थित-प्रज्ञ कहलाये, और ब्रह्म को प्राप्त करे | (६८)

उसने पढ़ा नहीं, उसने सुना

भावना सक्सैना

उसने पढ़ा नहीं, उसने सुना....
उसने सुना भी दूसरों के मुख से।
उसने देखा नहीं, उसने सुना
उनके मुख से
जिन्होंने स्वयं भी नहीं देखा था....
उसने सुना,
सुनी दूसरों की धारणाएँ
और अपनी धारणाएँ बना लीं।
उन्हें सीने से लगा लिया
और यूँ अपना लिया
कि और कोई अपना न हो।
वह भूल गया सब
जो पढ़कर समझा था
सोचा था, गुना था
कि कही-सुनी से परे
होती है सच की दुनिया
वो सच जो बदलता नहीं।
लेकिन उसने सोचा नहीं
वो रुका नहीं, ठहरा नहीं
और अब वो इंसान भी नहीं
वो है भीड़ की एक भेड़
और सुकून, न भीड़ को है
न भेड़ों को...

ऊँचाइयाँ

डॉ. हंसा दीप

डॉ. आशी अस्थाना का भाषण चल रहा है। वे एक सुलझी हुई नेता हैं। नेता और नारी दोनों की भूमिका ने उनके व्यक्तित्व को ऊँचाइयों तक पहुँचाने में मदद की है। कभी वे अपनी कुर्सी के लिए भाषण देती हैं, कभी नारी की अस्मिता के लिए। उनके विचारों के सख़्त धरातल पर कभी राजनीति हावी होती है, तो कभी समाज नीति। एक ओर सत्ता की डोर को थामे उनके भीतर शासन करने का गर्व छलकता है, दूसरी ओर एक स्त्री होने की क्षमताओं को वजन देते उनके अंदर की नारी शक्ति हिलोरें मारने लगती है। दो मोर्चे एक साथ खोल रखे हैं उन्होंने, एक तो अपने सत्ताधारी दल की अधिकृत प्रवक्ता होने का और दूसरा नारी के ख़िलाफ़ हो रहे अत्याचारों के ख़िलाफ आवाज़ उठाने का।

उनके भाषण बहुत तीखे और बहुत झकझोर देने वाले होते हैं। राजनीति के गलियारों में उनकी आवाज़ विरोधी पार्टियों की खटिया खड़ी कर देती है। एक-एक करके उनके तीखे कटाक्ष और धारदार लहज़ा उन्हें एक आक्रामक नेता की छवि देते हैं। वहीं सामाजिक परिवेश में उनकी आवाज़ पुरुषों के आधिपत्य को जड़मूल से ख़त्म करने की हर सम्भव कोशिश को अंजाम देने की पुरजोर चेष्टा को बलवती करती है।

राजनैतिक ठेकेदारों का आधिपत्य उनसे ख़ौफ खाता है। जब सत्ता में उनकी पार्टी होती है तब भी, और नहीं होती है तब भी। अपने विरोधी दलों की मिट्टी-पलीत करने में उनका कोई सानी नहीं – "किस देश के विकास की बात करती है यह पार्टी, किसी भुलावे में मत रहिए। उनकी पार्टी देश की नहीं अपनों के विकास की बात करती है। अपनी जेबें ठसाठस भरने से फुरसत कब मिलती है उन्हें जो देश के बारे में सोचें। अपनी आने वाली सात पीढ़ियों की चिंता में लगी ये स्वार्थी दलीय राजनीति की चालें देश को गर्त में ले जाकर ही छोड़ेंगी। हमें देखिए हमने क्या-क्या नहीं किया देश के विकास के लिए। हमारे सारे काम खुली किताब की तरह होते हैं, कुछ छिपा हुआ नहीं होता।"

कई बार इतना समय भी नहीं होता कि वे प्रेस के लिए रुक पाएँ, पूरा काफ़िला तत्काल अगली सभा की ओर बढ़ जाता। कार से जाते हुए रास्ते में पानी पीकर अगली सभा की तैयारियों में जुट जातीं। देश सेवा और समाज सेवा का पसीना मिलकर ऐसा टपकता कि लगता ऐसी ही शक्ति की ज़रूरत है हमारे देश की ज़मीन को कि इस पसीने से बहता पानी ही सूखी ज़मीन की सिंचाई कर दे। उनकी दबंगई गूँजती सत्ता के चोबारों में भी, और समाज के चौराहों पर भी।

तालियों में गूँजती उनकी आवाज़ एक मंच से दूसरे पर जाती तो उनका नज़रिया और सोच, पार्टी से हटकर समाज-सुधार की ओर होते। पित्तृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था पर उनके वार होते और हर शब्द से बगावत की बू आती - "सदियों से होते दमन और शोषण के प्रति चेतना ने स्त्री सशक्तिकरण की लड़ाई को जन्म दिया है। हाशिए पर धकेल दी गई अस्मिताओं को पुन: उनका स्थान दिलाना है। स्त्री की गरिमा को पुन: प्रतिष्ठित करने का महाभियान है यह। स्त्री का दमन पुरुष सत्तात्मक समाज में होता रहा है जहाँ उसे दोयम दर्जे का प्राणी समझा जाता है। लिंग भेद की राजनीति करके आप समाज की प्रतिष्ठा को दाँव पर लगा रहे हैं। समाज के अक्स को बदलो वरना समाज रसातल में जाएगा। कब तक दबाओगे, कब तक अपनी मनमानी करोगे, अरे बस करो अब!"

यहाँ से जाने के पहले पत्रकारों से रूबरू होना अति आवश्यक होता। पत्रकारों के समूह से कुछ महिला पत्रकार उनका इंटरव्यू लेने आगे बढ़तीं। माला और आन्या, वे टीवी एंकर जो अपने-अपने चैनल पर चिल्ला-चिल्ला कर महिलाओं की दबी हुई इच्छाओं को बाहर आने के लिए ललकारती हैं, अपने बुने जाले से बाहर आने

का आह्वान करती हैं, किचन से आगे के संसार से मुख़ातिब कराती हैं, उनका सौभाग्य है कि उन्हें आज पहली बार मौका मिला है डॉ. आशी अस्थाना जी से आमना-सामना करने का। ऐसे व्यक्तित्व से साक्षात्कार करने का जिसकी आवाज़ एक आंदोलन है, स्त्री की परम्परागत छवि से एक अलग पहचान बनाने की।

"हमारे दर्शकों को बताइए आशी जी, आप स्त्रियों के अधिकारों के लिए क्या कर रही हैं?"

"मैं पूरी तरह से समर्पित हूँ इसके लिए। हमने संविधान में नयी धाराएँ जोड़ने का प्रावधान किया है। आज ही मेरी प्रधानमंत्री जी से बात हुई है। आपको पता लग जाएगा कि मैं क्या कर रही हूँ।"

"ज़रा दो लाइनों में उनके बारे में बताना चाहेंगी हमारे दर्शकों को।"

"दो लाइनों में, कैसी बात करती हैं आप! हमारा विशाल स्त्री समाज सदियों से इस आग में झुलस रहा है। इस विशालकाय समस्या को बताने के लिए दो लाइनों की नहीं, दो मिनटों की नहीं, दो युगों की जरूरत है।"

"तो क्या आपका गुस्सा पुरुषों पर है?"

"और किस पर होगा। आप ही बताइए, घर की दीवारों पर तो होगा नहीं। घर के बर्तनों पर तो होगा नहीं। यह पुरुष सत्तात्मक समाज है जिसमें हम जीने को मजबूर हैं। हमें चुटकुलों के पात्र बना खी-खी-खी करना बंद करें ये पुरुष। मैं पिछले पचास सालों से इस दिशा में चेतना जगाने का प्रयास कर रही हूँ लेकिन अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता न। हमारी सारी शक्ति तो रोटियाँ बेलने में लगी है।"

पत्रकार उनकी उम्र देखने लगीं वे पचपन से अधिक की नहीं थीं। लगता है कि चार-पाँच साल की उम्र से ही राजनीति और समाजनीति पर बातें कर रही हैं। समझ भी नहीं होगी कि यह सब क्या होता है, संविधान क्या होता है। खैर, अतिशयोक्ति हो ही जाती है, जोश में थोड़े होश खोना तो बनता है। ऐसे बड़े हस्ताक्षरों के हर शब्द पर नहीं हर अर्थ पर जाना बुद्धिमत्ता है।

"तो आप प्रयास करती रहेंगी औरों को जोड़ने के लिए..."

"निश्चित ही मरते दम तक करती रहूँगी। मेरा नाम आशी है, आशा से बना है और आशा कभी टूटती नहीं। जिस दिन टूटे उस दिन जिजीविषा खत्म होने का अंदेशा होने लगता है। मैं सभी बहनों से अनुरोध करूँगी कि आगे आएँ, महिला शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाएँ और समाज में बराबरी का दर्ज़ा हासिल करें।"

प्रसिद्ध नारी चेतना की संचालक और केन्द्रीय मंत्री का बड़ा तमगा कंधे पर लगने के बाद उनका रोब काफी बढ़ गया था। अपने तमगे से टकरा कर परावर्तित होता, दुगुना होता यह आक्रोश, जब शब्दों में बाहर आता था तो जोश भर जाता था। समारोह में जान आ जाती थी। कार्यकर्ताओं को लगता कि उनकी मेहनत सफ़ल हो गयी। ऐसा दबदबा था उनका, इतना कि उनके सामने किसी की भी बोलती बंद हो जाती। अपने सफल कार्यक्रमों के बाद जब वे घर पहुँचती थीं तो उनका बेटा और पति स्वागत के लिए तैयार रहते। आधे घंटे पहले हर चीज़ अव्यवस्थित पड़ी होती, अपनी जगह पर जाकर मुस्कुराने लगती। किचन का काउंटर टाप साफ हो जाता व फर्श पर बिखरे जूते, मोजे, कचरा-बगदा सब गायब हो जाते।

वे बहुत खुश होतीं, अपनी किस्मत पर रश्क़ करतीं और थकी-हारी आकर चाय के साथ अपने दिन की वर्चस्वता का बखान करतीं। कितना आदर-सत्कार है उनका हर ओर! लोग कितने डरते हैं उनसे! उनके भाषण कौशल्य की दाद हर कोई देता है। एक मिसाल हैं वे अपने राजनैतिक और सामाजिक समाज में। यहाँ तक कि सारे पुरुष नेता भी भयभीत हो जाते हैं कि पता नहीं कब उनकी खिंचाई हो जाए।

घर का माहौल देखते-सुनते, जवान होते बेटे अलंकार को जो समझ में आता था वह यह कि किसी भी लड़की को कभी भी कम नहीं समझना चाहिए। घुट्टी में पी-पीकर अंदर तक पैठ चुकी थी यह समझ। वह स्वयं को देखता और सोचता कि – "काश, वह एक लड़की के रूप में जन्म लेता! लड़कियाँ कितनी ताकतवर होती हैं! बिल्कुल माँ की तरह होता वह भी, निडर।" लेकिन वह एक लड़का है इसीलिए उसे पापा की तरह रहना होगा। हमेशा डरे-डरे और सहमे-सहमे। शायद इसीलिए खुद को किसी भी लड़की से बहुत कमज़ोर समझता था वह।

उसका दिमाग़ लड़कियों से दूर रहने की ताकीद करता रहता। लड़कियों के लिए उसके मन में एक अनजाना-सा डर था।

पापा को रोज़ देखता था, बचपन से लेकर आज तक। वे घर में तब अधिक रहते थे जब माँ नहीं होतीं। माँ के घर आते ही घर से बाहर जाने का उन्हें कोई न कोई काम निकल आता। देखता था कि माँ के घर आ जाने पर किस तरह वे दबे-दबे रहते हैं। उनकी अनुपस्थिति में वे बिंदास होते थे, मस्त खेलने, हँसने-हँसाने वाले। वह भी डरता था माँ से। जानता था कि माँ उसे बहुत प्यार करती हैं। उसके लिए सब कुछ कर सकती हैं लेकिन पापा के लिए वे कुछ अधिक ही कठोर हैं। पापा को माँ के सामने चुप रहते देख उसे अच्छा नहीं लगता था। पापा की मजबूरी उसकी कमज़ोरी बनती जा रही थी।

इस सबसे बेखबर आशी जी ने अपने रुतबे के साथ अपने अलंकार के लिए लड़की देखना शुरू कर दिया। सोशल मीडिया पर उसकी प्रोफाइल लगा दी। संदेश आने-जाने लगे। कुछ प्रस्ताव अपने स्तर के लगे तो अलंकार से बात करनी जरूरी लगी – "बेटे यह लड़की अच्छी लग रही है, इससे बातचीत शुरू करो।" अलंकार देखता, मन से, अनमने मन से, पर देखता जरूर। कोई न कोई ख़ामी नज़र आ ही जाती। माँ का बचाव पक्ष मजबूत होता तो उसे बचने के कोई आसार नहीं दिखाई देते। तब आखिरी हथियार आजमाता, वह साफ कह देता कि – "मुझे शादी नहीं करनी"।

आमतौर पर हर युवा मन अपनी वैवाहिक गतिविधि को ना-नुकूर से ही शुरू करता है और धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता है। यही सोचकर आशी जी आश्वस्त थीं। एक के बाद एक अच्छे-से, ठोक-बजा कर चयन किए गए रिश्तों का यही हश्र होता रहा तो उनका माथा ठनका। अगले रिश्ते में वे अड़ गयीं – "अच्छा बताओ, क्या ठीक नहीं लग रहा? लड़की सुन्दर है, पढ़ी लिखी है, परिवार अच्छा है और क्या चाहिए तुम्हें?"

"ये तो आपके मापदंड हैं, मेरे नहीं।"

"तो तुम्हारे मापदंड बताओ, बताओगे नहीं तो पता कैसे चलेगा।"

"आपको पता होना चाहिए, नहीं पता है तो पता लगाइए।"

घुमा-फिरा कर देने वाले जवाब किसी ओर-छोर तक नहीं पहुँचे। आशी जी की तलाश जारी रही और अलंकार का इनकार जारी रहा।

आज सुबह उनका यह आशावादी रवैया डगमगाने लगा था। दिल को धक्का लगा था तब, जब बेटे अलंकार की मेज से एक पेन उठाने गयी थीं; वह सब कुछ, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी उन्होंने। उसका लैपटॉप खुला था, किसी से प्यार भरी बातें हो रही थीं। वे खुश हुईं कि – "यह है उसके इनकार का कारण। उसने पहले ही कोई लड़की पसंद कर रखी है। पगला, इतनी सी बात नहीं बता पाया मुझे।"

मगर अगले ही पल जिसकी फोटो देखी वह झकझोर देने वाली थी। यही एक कारण था कि बेहद महत्वपूर्ण समारोह के बाद भी आशी जी तनाव में थीं। भाषण की तैयारियों का जोश धूमिल हो गया था। उस समय यह प्राथमिकता थी, समारोह में जाकर मुख्य अतिथि की भूमिका निबाहने की। वह पूरा होते ही फिर से सुबह की घटना विचलित करने लगी। एक भय था कहीं परिस्थितियाँ उनके खिलाफ तो नहीं हो रहीं, घर में उनकी अनुपस्थिति किसी भावी संकट की नींव को पुख़्ता तो नहीं कर रही। आशंकाओं के घेरे में सब कुछ ठीक होने की अपनी आशा को कायम रखने की कोशिश कर रही थीं वे।

ऐसी परिस्थिति थी यह, जो इतनी दबंग नारी को निराश कर रही थी। अपने वातानुकूलित चेम्बर में भी पसीना आ रहा था उन्हें। एक झूठा दिलासा था कि शायद वे हर छोटी बात को बहुत गम्भीरता से लेती हैं। उतनी गम्भीरता से लेने की आवश्यकता नहीं है। बहुत बार समझाया खुद को कि सब कुछ इस तरह लो जैसे ऐसा कुछ खास नहीं देखा उस फोटो में, जो उसकी स्क्रीन पर था। हो सकता है वहीं किसी लड़की की तस्वीर हो जो छुप गयी हो। उनकी आँखों का भ्रम हो यह। कुछ ज़्यादा ही सोचने लगी थीं वे अपने जवान बेटे के बारे में।

ऐसी छोटी-मोटी बातों से इतनी बेचैनी क्यों। ज़रा-सी बात में बात का बतंगड़ बनाने का कोई फायदा नहीं। अलंकार से बात करके सब कुछ साफ किया जा सकता है। सबसे अच्छा तो यही होगा कि उसकी शादी की बात चलायी जाए। अच्छा रिश्ता मिल जाए तो जल्द से जल्द हाथ पीले कर दिए जाएँ। बेटे के लिए इतना भी नकारात्मक सोचने की जरूरत नहीं है। कई अच्छे रिश्तों की लम्बी कतार थी मगर अलंकार का कहीं भी ध्यान नहीं था। रिश्ते पर चर्चा होती, मगर अलंकार हर बार एक ही बात कहता – "उसे शादी नहीं करनी है।"

जो माँ से नहीं कह पा रहा है वह यह कि वह लड़की से बात करते हुए भी डरता है। एक खौफ़ है मन में। जैसी पापा की हालत है वैसी अपनी हालत होते देखता है। आए दिन के माँ के भाषण समारोहों और टीवी कार्यक्रमों को देख पापा की दहशत और बढ़ती थी। उन्हें पता था कि जितना सफल कार्यक्रम होगा उतना अधिक घर का वातावरण रोबीला होगा। इस खौफ़ की वजह से उसका मन कहीं और लग गया है। वह अपने दोस्तों में अपनी खुशी ढूँढने लगा है। हर लड़की से वह दूर रहने की कोशिश करता रहा। कभी भूले से कोई सामने भी आ जाती तो रास्ता काट कर निकल जाता। काली बिल्ली तो अपने रास्ते पर जाते हुए अनजाने में लोगों के रास्ते में पड़ जाती है, बेचारी गालियाँ खाती है। अलंकार स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए किसी और का नहीं, अपना ही रास्ता काटता। अपने घेरे से कभी बाहर ही नहीं आता।

कई बार किसी पारिवारिक शादी के समारोह में जाना पड़ता तो एक ऐसी जगह जाकर बैठता जहाँ कोई उसे देख न सके, या फिर किसी बहाने से वहाँ से बगैर खाए-पीए अपने घर वापस जाता। इकलौती संतान होने के जितने फ़ायदे हैं उतने ही नुकसान भी हैं। वह अपनी घुटन को किसी से साझा नहीं कर सकता। अपने अंदर के भय को बाहर नहीं ला पाता। अपने आपको अपराधी पाता है जब पापा चुपचाप माँ के आगे-पीछे बगैर सवाल किए ऐसे चलते हैं जैसे माँ के इशारों पर वे सिर्फ एक कठपुतली की तरह नाच रहे हैं । उसे माँ से बात करना भी अच्छा नहीं लगता। वह उनसे भी दूर रहता। स्त्री मात्र की छाया से भी दूर जहाँ किसी प्रकार का कोई हिटलरी फरमान जारी न हो।

आशी जी की आशा अभी भी साथ थी। मन में दृढ़ निश्चय था कि ऐसी लड़की ढूँढ कर लाएँगी कि देखते ही अलंकार शादी के लिए "हाँ" कर देगा। हर दूर के, पास के रिश्तेदार को सूचित किया कि अलंकार के योग्य कोई रिश्ता नज़र में हो तो तुरंत बताए। एक के बाद एक कई रिश्ते आए, उसने "हाँ" नहीं की तो नहीं की।

अपने स्वभाव के प्रतिकूल शहद जैसी मिठास के साथ पूछा आशी जी ने – "बेटा बात क्या है? मैं भी तो जानूँ, क्यों शादी नहीं करना चाहते तुम?"

"इस लड़की वाली किट-किट से दूर रहना चाहता हूँ मैं।"

"आखिर क्यों?"

"मुझे लड़कियों से सख़्त नफ़रत है।"

"नफ़रत है! क्या किसी ने दिल तोड़ा है तुम्हारा?"

"बचपन से अभी तक कई बार दिल टूटा है माँ, मेरा भी और पापा का भी।"

"तू क्या कह रहा है अलंकार, मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा। शादी नहीं करेगा तो करेगा क्या?"

"शादी तो मैं करूँगा पर किसी लड़की से नहीं।"

"अरे लड़की से नहीं करेगा तो क्या तू लड़के से शादी करेगा?"

"हाँ।"

"अलंकार..."

बेटे के गाल पर एक कस कर थप्पड़ मार देती हैं वे। तमतमा कर चला जाता है वह। हवा अब उल्टी दिशा से बह रही थी जो किसी तूफ़ान का संकेत दे रही थी, तबाही का भी। जो देखा था आशी जी ने और जिस

सच को नकारने पर तुली हुई थीं वह अब सामने खड़ा था। एक हट्टे-कट्टे मुस्टंडे का फोटो जिसको पुच्चियाँ दी जा रही थीं और गंदे इशारे किए जा रहे थे।

ऐसा ही कुछ डॉ. आशी अस्थाना को लग रहा था जैसे कि कोई उनकी अस्मिता को ललकार कर गया है। वह और कोई नहीं, उनका अपना बेटा अलंकार जिसे वे जी-जान से चाहती हैं। वे न तो अपने पति से बात कर पायीं, न अपने बेटे से। इतनी दूरियाँ थीं उन तीनों के बीच कि उन्हें लगा वे बहुत ऊँचाई से उन दोनों को खींचने की कोशिश कर रही हैं। वे इतने नीचे खड़े हैं कि उन तक पहुँचना नामुमकिन है। उनकी हालत उस मकड़ी की तरह हो गयी है जो दीवार की ऊँचाइयों को तो नाप लेती है लेकिन वहाँ बनाए गए बसेरे में उसका अपना कोई नहीं होता।

आशी जी भी अपनी ऊँचाइयों पर अपने आसपास एक जाला बुनते आयी थीं जिसके मजबूत रेशों में वे अंदर तक कैद हो गयी थीं। वे जाले उनके हर अंग को जकड़ रहे थे। जालों के जाल में वे उलझ कर रह गयी थीं। अपने आसपास के उस मकड़जाल में कैद जहाँ से निकलने का कोई रास्ता ही नहीं था।

मुक्तक

सुभाष ऋतुज

संकट में विचलित अज्ञानी होता है।
धैर्य नहीं खोता जो ज्ञानी होता है।
जिसे तैरना आता पार वह हो जाता,
रुख सागर का भले तूफानी होता है।

कर्म प्रधान है यह मानस बतलाती है।
कर्म का मर्म हमें गीता समझाती है।
कर्महीन का मिट जाया करता जीवन,
पड़े हुये लोहे को जंग खा जाती है।

मुक्तक

सुधेश

चिट्ठियाँ भी क्या चिट्ठियाँ थीं
उन में प्रेम था मस्तियाँ थीं
कुछ आँसू से लिखी गयीं
अनपढ़ी लिपि में चिट्ठियाँ थीं ।

जिन्दगी के चार दिन भी बहुत हैं
अगर हँस खेल कर कटे बहुत हैं
रोने झींकने में काटी जिन्दगी
दो चार गीत गा लें तो बहुत है ।

याद तो बहुत लोग आते हैं
पर मिलने बहुत कम आते हैं
वे व्यस्त हैं अपने धन्धों में
हम आँसू में रोज नहाते हैं ।

क्या क्या करे विवश यह आदमी
बन्धनों में जकडा हुआ आदमी
इसे कहाँ जीने देता यह जगत
आदमी से ही परेशाँ आदमी ।

दुआएँ रंग लाती हैं
खुशी भी संग लाती हैं
उसी पल की प्रतीक्षा है
जो अपने संग लाती हैं ।

मेरी दुआएँ, मेरी दुआएँ आप को
छू नहीं पाएँ सौ बलाएँ आप को
कितना चाहा और कितनी दी दुआएँ
राह के बीच में क्या बताऊँ आप को ।

विश्व को दर्शन देने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय

एकात्म दर्शन सदैव प्रासंगिक है

प्रभात झा
(माननीय वरिष्ठ भाजपा नेता, पूर्व राज्यसभा सांसद, पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भाजपा)

अजातशत्रु पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शताब्दी वर्ष २०१६में देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अगुआई में मनाया गया। वे २० वीं शताब्दी के वैचारिक युग पुरुष थे। उन्होंने भारत के जन-गण-मन का मर्म जाना था। वे एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता थे। उन्होंने विश्व को यह दर्शन दिया। इस दर्शन में आज भारत की संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ-साथ मानव को केंद्र-बिंदु में रखकर ही समाज व्यवस्थापन की प्रेरणा मिलती है। दीनदयाल जी कल भी प्रासंगिक थे, आज भी प्रासंगिक है, और आगे भी भी प्रासंगिक रहेंगे। एकात्म मानव तात्कालिक जनसंघ और भाजपा के लिए नहीं वरन् विश्व की मानव सभ्यता और संस्कृति के लिए एक पाथेय है। उनके उद्गार से उत्पन्न विचार के कुछ बिंदु हम यहाँ रख रहे हैं।

जनसंघः एक ऐतिहासिक आवश्यकता -

विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानव-जाति का अनुभव हमारी सम्पति है। विज्ञान किसी देश विशेष की बपौती नहीं। वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। किंतु भारत हमारी रंगभूमि है। भारत की कोटि-कोटि जनता पात्र ही नहीं, प्रेक्षे भी है, जिसके रंजन एवं आत्मसुख के लिए हमें सभी भूमिकाओं का निर्धारण करना है। विश्व-प्रगति के हम केवल द्रष्टा ही नही, साधक भी है। अतः जहाँ एक ओर हमारी दृष्टि विश्व की उपलब्धियों पर हो, वहीं दूसरी ओर हम अपने राष्ट्र की मूल प्रकृति, प्रतिभा एवं प्रवृत्ति को पहचानकर अपनी परम्परा और परिस्थिति के अनुरूप भविष्य के विकास-क्रम का निर्धारण करने की अनिवार्यता को भी न भूलें। स्व के साक्षात्कार के बिना न तो स्वतंत्रता सार्थक हो सकती और न वो कर्म चेतना ही जागृत हो सकती है, जिसमें परावलम्बन और पराभूति का भाव न होकर स्वाधीनता, स्वेच्छा और स्वानुभवजनित सुख हो। अज्ञान, अभाव तथा अन्याय की परिसम्पति और सदृढ़, समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुखी राष्ट्र-जीवन का शुभारम्भ सबके द्वारा स्वेच्छा से किए जाने वाले कठोर श्रम तथा सहयोग पर निर्भर है। यह महान कार्य राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नए नेतृत्व की अपेक्षा रखता है। भारतीय जनसंघ का जन्म इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए हुआ है।

भारतीय सांस्कृतिक अधिष्ठान की अपरिहार्यता -

लोकतंत्र, समानता, राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा विश्व शांति परस्पर सम्बद्ध कल्पनाएँ हैं। किंतु पाश्चात्य राजनीति में इनमें कई बार टकराव हुआ है। समाजवाद और विश्व-शासन के विचार भी इन समस्याओं के समाधान के प्रयत्न से उत्पन्न हुए हैं पर वे कुछ नहीं कर पाए। उलटे मूल को धक्का लगाया है और नई समस्याएँ पैदा की हैं। भारत की सांस्कृतिक चिंतन ही ताक अधिष्ठान प्रस्तुत करता है। जिससे उपर्युक्त भावनाएँ समन्वित हो वांछनीय लक्ष्यों की सिद्धि कर सकें। इस अधिष्ठान के अभाव में मानव-चिंतन और विकास अवरुद्ध हो गया है। भारतीय तात्त्विक सत्यों का ज्ञान देश और काल से स्वतंत्र है। यह ज्ञान केवल हमारी ही नहीं वरन् पूर्ण संसार की प्रगति की दिशा निश्चित करेगा।

एकात्म दर्शन -

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सृष्टि की विभिन्न सत्ताओं तथा जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य-भेद स्वीकार करते हुए वह उनके अंतर में एकता की खोज कर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर व परस्परावलम्बन, पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के अधार पर सृष्टि की क्रियाओं का

विचार करती है। वह एकांगी न होकर सर्वांगीण है। उसका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक अथवा वर्गवादी न होकर सर्वात्मक एवं सर्वात्कर्षवादी है। एकात्मकता उसकी धुरी है।

व्यष्टि और समष्टि -

व्यष्टि और समष्टि के बीच संघर्ष की कल्पना कर दोनों में से किसी एक को प्रमुख एवं सम्पूर्ण क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य मानकर पश्चिम में अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ है। किंतु दृश्य व्यक्ति अदृश्य समष्टि का भी प्रतिनिधित्व करता है। 'अहं' के साथ 'वयं' की सत्ता भी प्रत्येक अहं के द्वारा जीती है। प्रत्येक ईकाई में समुदाय की प्रवृति परिलक्षित होती है। व्यक्ति ही समष्टि के उपकरण हैं, उसके ज्ञान-तंतुब है। व्यक्ति के विनाश या अविकास से समष्टि पंगु हो जाएगी। व्यक्ति की साधना समष्टि की अराधना से भिन्न नहीं हो सकती। शरीर को क्षति पहुँचाकर कोई अंग कैसे सुखी हो सकता है। फूल का अस्तित्व पंखुड़ियों की शोभा तथा जीवन की सार्थकता पुष्प के साथ रहकर उसके स्वरूप बनाने और निखारने में है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समाज-हित के बीच कोई विरोध नही है।

पुरूषार्थ चतुष्ट्य -

व्यक्ति के विकास और समाज के हित का सम्पादन करने के उद्देश्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरूषार्थ की कल्पना की गई है। धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरे के पूरक और पोषक हैं। मनुष्य की प्रेरणा का स्त्रोत तथा उसके कार्यों का मापक किसी एक को ही मानकर चलना अधूरा होगा। फिर भी अर्थ और काम की सिद्धि का साधन है धर्म, अतः वह अधारभूत है।

धर्म का स्वरूप -

कई बार धर्म को मत या मजहब मानकर उसके गलत अर्थ लगाए जाते हैं। यह भूल अँग्रेजी के रिलीजन शब्द का अनुवाद धर्म करने के कारण हुई है। धर्म का वास्तिविक अर्थ है - वे सनातन नियम, जिनके आधार पर किसी सत्ता की धारणा हो और जिनका पालन कर व्यक्ति अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कर सके। धर्म के मूल तत्व सनातन है, किंतु उनका विवरण देश काल परिस्थिति के अनुसार बदलता है। इस संक्रमणशील जगत् मे धर्म ही वह तत्व है, जो स्थायित्व लाता है। इसलिए धर्म को ही नियंता माना गया है। प्रभुता उसी में निहित है।

राष्ट्र की आत्मा-चिति

समाज केवल व्यक्तियों का समूह अथवा समुच्चय नहीं, अपितु एक जीवंत सावयव सत्ता है। भूमि विशेष के प्रति मातृ-भाव रखकर चलनेवाले समाज से राष्ट्र बनता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं, अपितु जन्मजात है। इसे चिति कहते हैं। राष्ट्रों का उत्थान-पतन चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर करता है। विभिन्न विशिष्टताओं वाले राष्ट्र परस्पर पूरक होकर मानव एकता का निर्माण कर सकते हैं। राष्ट्रों की प्रकृति मानव एकता की विरोधी नहीं, यदि कहीं उसके विरूद्ध आचरण दिखता है तो वह विकृति का द्योतक है। राष्ट्रों का विनाश कर मानव एकता उसी प्रकार असम्भव तथा अवांछनीय है, जिस प्रकार व्यक्तियों को नष्ट कर समष्टि का अस्तित्व या विकास।

चिति की अभिव्यक्ति के उपकरण -

समाज की चिति स्वयं को अभिव्यक्ति करने तथा व्यक्तियों को विभिन्न पुरूषार्थों के सम्पादन की सुविधा प्राप्त कराने के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म देती है। समाज में इनकी वही स्थिति है, जो शरीर में विभिन्न अंगों की। जाति, वर्ण, पंचायत, संप्रदाय, संघ, पूग, विवाह, सम्पत्ति, राज्य आदि इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं। राज्य महत्वपूर्ण है, किंतु सर्वोपरि नहीं।

हमारी संस्कृति -

जब हम संगठन का कार्य करने चले हैं तो हमें अपने समाज से जोड़नेवाली चीज हमारी संस्कृति है। उसका विचार करना पड़ता है। आजकल कई लोग पूछते हैं कि आप किस 'वाद' में विश्वास करते हैं? हम किसी वाद को नहीं मानते। हम तो हिंदू संस्कृति अथवा भारतीय विचार में विश्वास करते हैं। फिर वे कहते हैं कि हम आधुनिक वादों समाजवाद, पूँजीवाद, अराजकता, अधिनायकवाद आदि में से किस पर विश्वास करते हैं? तों इनमें से किसी मे भी नहीं ये सब बाहर की उपज है। विदेशों में लोगों ने मुझसे पूछा, आप बीयर पीयेंगे या शैंपेन? ये दोनों भिन्न प्रकार की शराब हैं। लेकिन मैंने दोनों का निषेध किया। इसी प्रकार अपने देश में कुछ लोग कहते हैं कि आप पूँजीवाद में विश्वास करते हैं। हम कहते हैं - नहीं, तो कहते हैं साम्यवाद में करते होंगे? यह माना जाता है कि इन दोनों मे सबकुछ है। यह सत्य नहीं है। संसार में इनके अलावा दूसरे विचार भी हैं। ये सब 'वाद' बाहर के हैं। हम तो अपनी चीज को मानते हैं।

वैसे हम सत्य को सब जगह से ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि सत्य किसी स्थान विशेष का नहीं होता। जैसे हमने रेलगाड़ी को स्वीकार किया। परंतु पश्चिम के जितने भी दर्शन है, वे अधूरे हैं, वे सम्पूर्ण जीवन का विचार नही करते, किसी एक अंग का विचार करते हैं। इसलिए हम उनको स्वीकार नही करते। हमारी संस्कृति की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जीवन का सम्पूर्ण विचार किया गया है।

वर्तमान भाजपा नेताओं में आडवाणी जी, डॉ. जोशी जी सहित कुछ अन्य लोग पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के साथ काम किये होंगे। पर अधिकतर लोग जो आजादी के बाद की पीढ़ी में पैदा हुए, वे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में काम कर रहे हैं। अच्छी बात यह है कि नरेंद्र मोदी अपनी आँखों के सामने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन एवं अंत्योदय के सपने साकार कर रहे हैं। इससे यह लगता है कि दीनदयाल उपाध्याय की विचारधारा से जुड़े लोग सत्ता में आने के बाद भी उन विचारों को जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन करने में नित्य नए-नूतन निर्णय ले रहे हैं। यही कारण है कि वर्तमान सरकार से भारत का जन-जन जुड़ा हुआ है और अधिकतर लोग कह रहे हैं कि नरेंद्र मोदी की सरकार दीनदयाल जी के सपनों को साकार करने की दिशा में रात-दिन जुटी हुई है। उनका सपना था समाज के अंतिम पंक्ति के अंतिम व्यक्ति को अपने जीवन पर गर्व हो और वह ऊँचे स्वर में कह सके कि मुझे भारतीय होने पर गर्व है।

मैं से युद्ध

डॉ. मुक्ता

आज मेरा मेरी मैं से युद्ध है
जो वर्षों से चला आ रहा
मेरी मैं मुझे पराजित कर
आधिपत्य स्थापित करना चाहती
अहं को पुष्ट कर सबको नीचा दिखा
दबदबा कायम करना चाहती
सबसे अलग-थलग कर
सुक़ून पाती.

परंतु मुझे यह सब स्वीकार नहीं
मैं सबके अंग-संग रहने में खुशी पाती
मैं राग-द्वेष व स्व-पर से ऊपर रहती
मेरे हृदय में शीतल धारा बहती
क्योंकि मेरा सबके साथ सुंदर राब्ता
मैं समन्वय व सामंजस्यता की पक्षधर
मैं तुम में नहीं, हम में विश्वास रखती
यह है मेरी एकमात्र धरोहर
जिसके बल पर मैं अपना
साम्राज्य स्थापित करने में
स्वयं को समर्थ पाती
और ज़िंदगी
लम्हा-लम्हा गुज़रती जाती.

मूल्य-शिक्षा प्रसार में महिलाओं की भूमिका

पद्मश्री डॉ. रवीन्द्र कुमार

(सरदार पटेल राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित, शिक्षाशास्त्री एवं मेरठ विश्वविद्यलय के पूर्व कुलपति)

"मूल्य शिक्षा" में केवल दो शब्द हैं : "मूल्य" एवं "शिक्षा", लेकिन, इन दो ही शब्दों से बनी "मूल्य शिक्षा" की अवधारणा और उद्देश्य अति व्यापक है। पहला शब्द "मूल्य": एक वचनीय परिप्रेक्ष्य में मानव को व्यवहारों में रचनात्मकता की अनुभूति कराने वाला मूल तत्त्व है। मूल्य व्यक्ति को सदाचार में प्रविष्ट होने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। जब कोई मूल्य अनेक जन के जीवन व्यवहारों का सामान्य रूप से मार्गदर्शक बन जाता है; सदाचार उनके जीवन से सम्बद्ध हो जाता है, तो उस स्थिति में वृहद् कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। व्यक्तियों के जीवन को ऊँचाई देने के साथ, वृहद् कल्याण ही अन्ततः सभी मूल्यों का प्रयोजन होता है। वृहद् उन्नति, विशाल स्तरीय जनोत्थान, मूल्यों की आधारभूत भावना होती है। दूसरा शब्द "शिक्षा": वह प्रक्रिया जो जीवनभर जारी रहती है; मनुष्य के सर्वांगीण - चहुँमुखी विकास को समर्पित है, तथा मानव को मुक्ति के द्वार तक ले जाती है। इसीलिए तो भारत में कहा गया है, "सा विद्या या विमुक्तये – विद्या वही है, जो मुक्ति प्रदान करे।"

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साथ ही, वृहद् मानव कल्याण के मूल उद्देश्य को केन्द्र में रखते हुए "मूल्य" और "शिक्षा" एक-दूसरे से अभिन्नतः जुड़े हुए हैं। मूल्य शिक्षा, इसीलिए, वह है, जो किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना – समान रूप से महिला-पुरुष के चहुँमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करे। मूल्य शिक्षा मनुष्य को नैतिक, विकासोन्मुखी, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़कर रखती है। मनुष्य को वांछित कर्त्तव्यपरायणता की अनुभूति कराती है; उसमें, व्यक्तिगत से सार्वभौमिक स्तर तक व्यवस्था के सुचारु संचालनार्थ अपरिहार्य उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए अलख जलाती है। इस हेतु उसे प्रेरित करती है। इस प्रकार, मेरा अपना स्पष्ट मत है कि मूल्य शिक्षा, अपने सच्चे अर्थ में, वास्तविक शिक्षा का ही प्रतिरूप है। दूसरे शब्दों में, यह शिक्षा की मूल भावना का प्रकटीकरण है; जीवन सार्थकता का माध्यम अथवा मार्ग है। प्रचीनकालिक और सत्यमयी भारतीय उद्घोषणा "सा विद्या या विमुक्तये" की सम्पुष्टि है।

हजारों वर्षों से अति समृद्ध संस्कृति के पोषक तथा अति प्राचीनकाल से ही आध्यात्मिक-शैक्षणिक विश्वगुरु के रूप में अपनी पहचान रखने वाले – संसारभर को ज्ञान-विज्ञान में नेतृत्व प्रदान करने वाले देश हिन्दुस्तान में मूल्य शिक्षा का महत्त्व, प्रतिष्ठा और गौरव भी शताब्दियों पुराना है। मूल्य शिक्षा की अवधारणा विश्वभर के लिए नई हो सकती है। पश्चिमी जगत के देशों में इससे सम्बन्धित कई आधुनिक अवधारणाएँ सामने आई हैं, जैसे कि मानव-मूल्य प्रतिष्ठान की वर्ष १९९५ ईसवीं की "व्यापक मूल्य शिक्षा योजना"। लेकिन, कायिक – शरीर श्रम के साथ ही व्यायाम एवं योगाभ्यास, सदाचरण और आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण से ऋषियों-ऋषिकाओं व महर्षियों की छत्रछाया में ज्ञान प्रदान किया जाना प्राचीनकाल से ही व्यक्ति के चहुँमुखी विकास को समर्पित भारत की सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था – प्रक्रिया से अभिन्नतः जुड़े पक्ष हैं। मूल्य शिक्षा का पक्ष स्वाभाविक रूप से प्रचीनकालिक महर्षियों-ऋषियों-ऋषिकाओं और महापुरुषों-युगपुरुषों के जीवनकाल से जुड़ा है। महिलाओं के दृष्टिकोण से हम अति विशेष रूप से वैदिक मंत्रों से जुड़ीं – मंत्र दृष्टा रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शाश्वती व अपाला जैसी विभिन्न ऋषिकाओं व उपनिषदकालीन मैत्रेयी तथा गार्गी जैसी परम विदुषियों के नाम विशेष रूप से और गर्व के साथ हम आज भी ले सकते हैं। संक्षेप में कहने का तात्पर्य यह है कि मूल्य शिक्षा अतिप्राचीनकाल से ही भारत की शिक्षा-प्रक्रिया की पूरक – प्रतिरूप है। इसमें महिला वर्ग का योगदान प्रारम्भ

से ही महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय है। इन ऋषिकाओं से जुड़े शास्त्रार्थ प्रकरणों से मूल्य शिक्षा का श्रेष्ठतः प्रकटीकरण होता है। मैं यहाँ ऐसे किसी विस्तार में नहीं जा रहा हूँ, लेकिन निश्चित रूप यह कह सकता हूँ कि उनके शास्त्रार्थों आदि से प्रकट मूल्य शिक्षा के पक्ष आजतक भी विचारणीय हैं; वे जानने-समझने योग्य हैं।

मूल्य शिक्षा का प्रचीनकालिक भारतीय सन्दर्भ हो अथवा कोई पश्चिमी जगत से जुड़ा आधुनिक सिद्धान्त, लेकिन जो पहलू अनिवार्यतः इसके साथ सम्बद्ध हैं, या इसके मूल में हैं, वे सभी कालों में सामान्यतः एक समान रहे हैं। वर्तमान में भी वे ही प्रमुख हैं तथा मूल्य शिक्षा की मूल भावना, उद्देश्य एवं ध्येय को प्रकट करते हैं। नैतिक-चारित्रिक विकास, व्यवहार-कुशलता और दक्षता के साथ आत्म-निर्भरता, मूल्य शिक्षा से जुड़े पहलू हैं। ये व्यक्ति के चहुँमुखी विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं, जो, मैं पुनः कहूँगा, वास्तव में, शिक्षा की मूल भावना और उद्देश्य है। मूल्य शिक्षा को केन्द्र में रखकर जब हम नैतिक-चारित्रिक विकास की बात करते हैं, तो हमें, तब भी, निश्चिततः यह समझ लेना चाहिए कि इसका प्रयोजन व्यक्ति में उत्तरदायित्व भावना की अनुभूति एवं कर्त्तव्य-निर्वहन के लिए सदैव जागृति उत्पन्न करना है। सामान्यतः भी नैतिकता की कसौटी अन्ततः समुचित रूप से कर्त्तव्य-पालन – उत्तरदायित्व-निर्वहन ही है। इस सम्बन्ध में मैं अपने निर्धारित मत को प्रतिबद्धता के साथ दोहराते हुए कहता हूँ, "व्यक्ति में नैतिकता की परख उसके द्वारा उत्तरदायित्वों के निर्वहन से ही हो सकती है। जो व्यक्ति भली-भाँति अपने उत्तरदायित्वों को समझता है और उनका निर्वहन करता है, वही, वास्तव में, नैतिकता का पालन करता है। केवल ऐसा व्यक्ति ही नैतिक होने का दावा कर सकता है।"

नैतिकता-सदाचार, व्यवहार-कुशलता और आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने वाली – मानव के चहुँमुखी विकास, अर्थात् जीवन सार्थकता को समर्पित मूल्य शिक्षा की प्रथम पाठशाला परिवार है। प्रथम अध्यापिका, निस्सन्देह, माँ ही होती है। मूल्य शिक्षा के इस मूल स्रोत और केन्द्र से स्वतः ही स्पष्ट है कि इसके प्रारम्भ और प्रसार में महिला वर्ग की भूमिका सर्वप्रमुख है। इतना ही नहीं, इस सम्बन्ध में महिलाओं की भूमिका, वर्तमान में भी परिवार की धुरी होने के कारण, निर्णायक है, और सदा प्रासंगिक भी है।

मूल्य शिक्षा-सम्बन्धी जो समकालीन-आधुनिक अवधारणाएँ हैं, वे इसके प्रसार में, सामाजिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन के बाद भी – संस्थाओं के प्रभावी होने के बावजूद, परिवारों की भूमिका को अतिमहत्त्वपूर्ण स्वीकार करती हैं। जब परिवारों की भूमिका की बात हो, तो उसकी धुरी – महिला के निर्णायक योगदान की स्थिति स्वतः ही समझ में आ जाती है। इस सम्बन्ध में एलिस और मोरगन की पारिवारिक मूल्य योजना जैसे विचार भी हमारे सामने हैं।

महिलाएँ, यह वास्तविकता है, मूल्य शिक्षा की प्रारम्भिक स्रोत हैं। पारिवारिक-सामाजिक स्तरों पर इसके प्रसार में स्त्रियों की भूमिका अतिमहत्त्वपूर्ण है। साथ ही, शैक्षणिक संस्थाओं के माध्यम से, भारत ही नहीं, अपितु विश्व के सभी देशों में इस दिशा में महिलाओं का योगदान सराहनीय और उल्लेखनीय है। मैं स्वयं विश्वभर में मूल्य शिक्षा के क्षेत्र में महिला वर्ग की भूमिका और योगदान का अपने अनुभवों से साक्षी हूँ।

स्वयं शिक्षा क्षेत्र में अपने निरन्तर बढ़ते कदमों और सशक्तिकरण के स्तर में होती वृद्धि के चलते महिला वर्ग, निस्सन्देह, मूल्य शिक्षा के प्रसार में अभूतपूर्व योगदान कर सकता है। महिला वर्ग संसार की कुल जनसँख्या का लगभग आधा है। वर्तमान में विश्व में लगभग तीन अरब बयासी करोड़ महिलाएँ हैं। इसमें भी लगभग एक अरब किशोरियाँ और युवतियाँ हैं। यदि पचास वर्ष से कम आयु की महिलाओं की बात की जाए, तो यह संख्या लगभग दो अरब होगी। इसलिए, महिलाएँ इस हेतु पूर्णतः सक्षम हैं। बात केवल इसे उनके एक परम कर्त्तव्य के रूप में लेने की है। इस दिशा में महिलाओं से श्रेष्ठ कोई अन्य नहीं कर सकता। इसलिए, अपनी माताओं-बहनों से मेरा यह सादर अनुरोध रहेगा कि वे आगे आएँ। मूल्य शिक्षा प्रसार कार्य को नेतृत्व प्रदान करें। इस बहुत बड़े कार्य के माध्यम से मानवता को उसके वांछित स्तर तक पहुँचाने में अपनी भूमिका का निर्वहन करें।

वह चली कंटीली राहों पर

डॉ. संदीप अवस्थी

राह बस राह होती है, न कंटीली न दबी हुई
डराते हैं तुम्हें जिससे न बढ़ जाओ आगे तुम हमसे
वरना किस राह पर लिखा है कि यह पुरुषों के लिए सरल और
स्त्री के लिए कठिन, कंटीली?

जीन्स, टीशर्ट, खुले बालों और यहाँ तक कि साड़ी में भी तुम
लगती हो हमें देती चुनौती सी।
राज की बात बताएँ?
जो हम जोड़-तोड़, अथक मेहनत और
बेईमानी से पाते हैं उपलब्धि वह
तुम पा लेती हो अपने व्यवहार और सद्‌गुणों से.

हम बिना माँगे मदद, आगाह करते, अनचाहा फर्ज निभाते
कितने लाचार, दयनीय लगते हैं और
तुम...तुम सब समझती, बूझती कैसे
बर्दाश्त करके अपनी लय, तरीका, सुर नही छोड़ती
कि हमारी मदद के बिना ही तुम आगे आई हो और
आकाश छू रही हो
पर हम मजबूर हैं अपनी ग्रन्थि से
अपने अहंकार, झूठी शान और
खत्म होते वर्चस्व से.

हमने पहनाई बेड़ियाँ घर, बच्चों, नौकरी, श्रृंगार की
तुमने चुटकियों में कर डाला सब और
अपनी सर्जनात्मकता, सौंदर्यबोध से
फिर निकल पड़ी तुम अश्वमेध यज्ञ के अश्व-सी
पुरुष दुबका, सहमा, सीमित-सा देख रहा
पर तुमने ....पुरुष होना नही चाहा कभी तो
बढ़ाया हाथ दोस्ती, प्यार, विश्वास का.

हरिद्वार कुम्भ २०२१

डॉ. विदुषी शर्मा

कुम्भ का शाब्दिक अर्थ कलश होता है। कुम्भ का पर्याय पवित्र कलश से होता है। इस कलश का हिन्दू सभ्यता में विशेष महत्व है। कलश के मुख को भगवान विष्णु, गर्दन को रुद्र, आधार को ब्रह्मा, बीच के भाग को समस्त देवियों और अंदर के जल को सम्पूर्ण सागर का प्रतीक माना जाता है। यह चारों वेदों का संगम है। इस तरह कुम्भ का अर्थ पूर्णतः औचित्य पूर्ण है। वास्तव में कुम्भ हमारी सभ्यता का संगम है। यह आत्म जागृति का प्रतीक है। यह मानवता का अनंत प्रवाह है। यह प्रकृति और मानवता का संगम है। कुम्भ ऊर्जा का स्त्रोत है। कुम्भ मानव-जाति को पाप, पुण्य और प्रकाश, अंधकार का एहसास कराता है। नदी जीवन रूपी जल के अनंत प्रवाह को दर्शाती है। मानव शरीर पंचतत्वों से निर्मित है यह तत्व हैं - अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश। इसलिए कुम्भ अपने आप में एक पूर्ण सार्थकता लिए हुए है।

कुम्भ भगवान विष्णु का नाम है। कुम्भ शब्द चुरादि-गणीय। (विष्णु सहस्त्रनाम-श्लोक ८७)

कुभि (कुम्भ) आच्छादन धातु से विपन्न होता है। जो आच्छान करता है, ढकता है, आवृत किए रहता है। इसलिए वह भी कुम्भ है। इसे कमु कान्तै धातु से जोड़ने पर अमृत प्राप्ति की कामना का बोध होता है। इसलिए कुम्भ को पेट, गर्भाशय, ब्रह्मा, विष्णु की संज्ञा दी गई है। पृथ्वी लोक में कुम्भ, अर्धकुम्भ पर्व के सूर्य, चन्द्रमा तथा बृहस्पति तीन ग्रह कारक हैं। सूर्य आत्मा है, चन्द्रमा मन है, बृहस्पति ज्ञान है। आत्मा अजर, अमर, नित्य तथा शान्त है, मन चंचल, ज्ञान मुक्ति कारक है। आत्मा में मन का लय होना, बुद्धि का स्थिर होना नित्य मुक्ति का हेतु है। ज्ञान की स्थिरता तभी सम्भव है जब बुद्धि स्थिर हो। देवी बुद्धि का कारक गुरु है। बृहस्पति का स्थिर राशियों वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ में होना ही बुद्धि का स्थैर्य है। चन्द्रमा का सूर्य से युक्त होना अथवा अस्त होना ही मन पर आत्मा का वर्चस्व है। आत्मा एवं मन का संयुक्त होना स्वंकल्याण के पथ पर अग्रसर होना है। कुम्भ, अर्ध कुम्भ को हम शरीर, पेट, समुद्र, पृथ्वी, सूर्य, विष्णु के पर्यायों से सम्बद्ध करते हैं पर समुद्र, नदी, कूप आदि सभी कुम्भ के प्रतीक है। वायु के आवरण से आकाश, प्रकाश से समस्त लोकों को आतृत करने के कारण सूर्य नाना प्रकार की कोशिकाओं, स्नायु तंत्रों से आवृत्त रहता है, इसलिए कुम्भ है। कुम्भ इच्छा है, कामवासना रूप को आतृत करने के कारण काम ब्रह्मा है। चराचर को धारण करने, उसमें प्रवृष्ट होने के कारण विष्णु स्वयं पूर्ण कुम्भ है।

कुम्भ पर्व हिंदू धर्म का एक महत्वपूर्ण पर्व है, जिसमें करोड़ों श्रद्धालु कुम्भ पर्व स्थल हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में स्नान करते हैं। इनमें से प्रत्येक स्थान पर प्रति बारहवें वर्ष और प्रयाग तथा हरिद्वार में दो कुम्भ पर्वों के बीच छह वर्ष के अंतराल में अर्धकुम्भ भी होते हैं। खगोल गणनाओं के अनुसार यह मेला मकर

संक्रांति के दिन प्रारम्भ होता है, जब सूर्य और चन्द्रमा, वृश्चिक राशि में और बृहस्पति, मेष राशि में प्रवेश करते हैं। मकर संक्रांति के होने वाले इस योग को "कुम्भ स्नान-योग" कहते हैं ।

हरिद्वार में कुम्भकाल - कुम्भ पर्व एक अमृत स्नान और अमृतपान की बेला है। इसी समय गंगा की पावन धारा में अमृत का सतत प्रवाह होता है। इसी समय कुम्भ स्नान का संयोग बनता है। कुम्भ पर्व भारतीय जनमानस की पर्व चेतना की विराटता का द्योतक है। विशेषकर उत्तराखंड की भूमि पर तीर्थ नगरी हरिद्वार का कुम्भ तो महाकुम्भ कहा जाता है।

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशि गते गुरौ। गंगाद्वारे भवेत् योग: कुम्भनामा तदोत्तम:।।

बृहस्पति कुम्भ राशि एवं सूर्य राशि जब होते हैं, तब हरिद्वार में अमृत-कुम्भयोग होता है।

वसंते विषुवे चैव घटे देवपुरोहिते। गंगाद्वारे च कुन्ताख्य: सुधामिति नरो यत:।।

बसंत ऋतु में सूर्य जब मेष राशि में संक्रमण करता है एवं देव पुरोहित वृहस्पति कुम्भ राशि में आते हैं, तब हरिद्वार में कुम्भ मेला होता है। इस योग से मानव सुधा यानी अमृत प्राप्त करता है।

कुम्भराशिगते जीवे यद्दिने मेषगेरवो। हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्ति वर्ज्जनम्।।

जिन दिनों में बृहस्पति कुम्भ राशि में एवं सूर्य मकर राशि में रहेंगे, उन्हीं दिनों हरिद्वार में कुम्भ स्नान करने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

नक्षत्रों के इस विशेष संयोग के दौरान कल-कल बहती मोक्षदायिनी पतित पावनी श्री मां गंगा का पावन जल अमृतमयी हो जाता है। विशेष नक्षत्र, विशेष परिस्थितियों में पावन गंगा के पवित्र जल के पूजन और स्नान मात्र से ही व्यक्ति बैकुंठ की प्राप्ति का हकदार बन जाता है। समस्त पापों और कष्टों का निवारण हो जाता है और आत्मा शुद्ध हो जाती है। साथ ही परमात्मा का अंत:करण में वास हो जाता है।

कुम्भ महापर्वों का सम्बंध देवगुरु बृहस्पति और जगत आत्मा सूर्य के राशि परिवर्तन से जुड़ा है। लेकिन जिस कुम्भ राशि से कुम्भ पर्व मुख्य रूप से जुड़ा है उस राशि में बृहस्पति केवल हरिद्वार कुम्भ में ही प्रवेश करते हैं। प्रयागराज, उज्जैन और नासिक में बृहस्पति कुम्भस्थ नहीं होते।

हरिद्वार में गुरू के कुम्भस्थ होने के कारण माना जाता है कि चारों कुम्भ नगरों में कुम्भ का पहला महापर्व हरिद्वार में पड़ा था। उसी के बाद अन्य कुम्भ नगरों में कुम्भ शुरू हुए। शास्त्रों के मुताबिक जिस समय चार नगरों में कुम्भ कलश छलके, उस समय कलश की सुरक्षा बृहस्पति और सूर्य के जिम्मे थी। ये दोनों ग्रह राशियों के हिसाब से चारों कुम्भ नगरों में कुम्भ का कारण बने।

हरिद्वार कुम्भ का वैशिष्ट्य - बृहस्पति को कुम्भ राशि में आने का परम मुहूर्त सौभाग्य केवल हरिद्वार में प्राप्त हुआ। हरिद्वार ही एकमात्र ऐसा कुम्भ नगर है जहाँ बृहस्पति के कुम्भ और सूर्य के मेष राशि में आने पर कुम्भ महापर्व और मेला लगता है। शाही स्नान होते हैं। जबकि प्रयाग में बृहस्पति के वृष और सूर्य के मकर राशि में आ जाने पर कुम्भ पर्व का महायोग आता है।

इसी प्रकार उज्जैन कुम्भ मेला तब होता है जब बृहस्पति का आगमन सिंह और सूर्य का प्रवेश मेष राशि में हो जाए। नासिक में भी बृहस्पति के सिंह और सूर्य के भी सिंह राशि में होने पर कुम्भ का मेला लगता है। सूर्य जहाँ बारह महीनों में सभी बारह राशियों की यात्रा पूरी कर लेते हैं, वहीं बृहस्पति को एक राशि से दूसरी में जाने में बारह वर्ष लगते हैं।

यही कारण है कि कुम्भ मेला एक स्थान पर बारह वर्ष बाद आता है। यहाँ यह भी खास है कि उज्जैन और नासिक के कुम्भ मेले करीब-करीब एक वर्ष में ही होते हैं। खगोलीय गणित और राशि प्रवेश पर निर्भर कुम्भ मेला केवल हरिद्वार में ही कुम्भस्थ होता है। प्रयाग कुम्भ को वृषस्थ, उज्जैन और नासिक कुम्भ मेलों को सिंहस्थ कहते हैं। कुम्भस्थ होने के कारण हरिद्वार कुम्भ को ही पहला कुम्भ माना जाता है।

पौराणिक मान्यताएँ - पुराणों के अनुसार हिमालय के उत्तर में क्षीरसागर है, जहाँ देवासुरों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। मंथन दंड था - मंदर पर्वत, रज्जु था - वासुकि तथा स्वयं विष्णु ने कूर्म रूप में मंदर को पीठ पर धारण किया था। समुद्र मंथन के समय क्रमश: पुष्पक रथ, ऐरावत हाथ, परिजात पुष्प, कौस्तुभ, सुरभि, अंत में अमृत कुम्भ को लेकर स्वयं धन्वंतरि प्रकट हुए थे। उक्त कुम्भ को उन्होंने इंद्र को दिया था। इंद्र ने उसे अपने पुत्र जयंत को सौंपा। देवताओं की सलाह पर जयंत उस कुम्भ को लेकर स्वर्ग की ओर दौड़ा। यह देखकर दैत्याचार्य ने क्रोधित होकर दैत्यों को आदेश दिया कि बलपूर्वक उस कुम्भ को उससे छीनें। देवासुर संग्राम होने लगा। १२ दिन तक युद्ध करने के बाद देवताओं का दल हार गया। इसी बीच पृथ्वी के कई स्थानों पर कुम्भ को छिपाया गया था। जिन ४ स्थानों पर कुम्भ रखा गया था, उन्हीं स्थानों पर तब से 'कुम्भ योग पर्व' मनाया जा रहा है। देवताओं के १२ दिवस नरलोक (पृथ्वीलोक) में १२ वर्ष होते हैं। वही वजह है कि प्रति १२ वर्ष के पश्चात् कुम्भ में स्नान करने के लिए यह महोत्सव होता है।

देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यै द्वार्दशवत्सरै:। जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादश संख्यया:।।

कुम्भ पर्व की ऐतिहासिकता - कुम्भ मेला अपनी ऐतिहासिकता के साथ ही अपनी वैभवता के लिए दुनियाभर में विख्यात है और कुम्भ मेले के बारे में ऐतिहासिक दस्तावेज सिर्फ भारत में ही नहीं मिलते हैं, बल्कि कई विदेशी यात्री भी कुम्भ मेले के बारे में सदियों से लिखते रहे हैं। इन ऐतिहासिक किताबों को यदि खंगाला जाए तो कुम्भ मेले से सम्बन्धित कई रोचक किस्से और कहानियाँ मिलती हैं। ऐसा एक किस्से का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी किया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग जब भारत भ्रमण के लिए आया था, उसी दौरान भारत में कुम्भ मेले का भी आयोजन हुआ था। पहली बार इतने बड़े विशाल मेले का आयोजन देखकर ह्वेनसांग (Xuanzang) चकित रह गया था और उसे अपनी आंखों पर यकीन नहीं हो रहा था कि साधु संतों का इतना बड़ा विशाल धार्मिक मेला भी धरती पर आयोजित होता है।

ह्वेनसांग ने ६४४ ईस्वी में प्रयाग में आयोजित कुम्भ मेले की यात्रा की थी। उसने जब इस मेले में जानकारी हासिल की थी तो उसे बताया गया था कि कुम्भ मेले आयोजन का उल्लेख महाभारत में भी मिलता

है। ह्वेनसांग (Xuanzang) ने लिखा कि भारत में हर तीन साल के क्रम पर हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में विशाल कुम्भ मेले का आयोजन किया जाता है और १२ वर्ष के अंतराल पर इन चार नगरों में कुम्भ मेला लगता है।

६४४ ईस्वी सन् में प्रयाग में आयोजित कुम्भ मेले को लेकर ह्वेनसांग ने लिखा कि तत्कालीन सम्राट हर्षवर्धन कुम्भ मेले को लेकर काफी उत्साहित थे और उन्होंने इसके आयोजन के लिए अपना राजकोष खोल दिया था। ह्वेनसांग ने बताया कि बीते पांच साल में जितना भी कर संग्रहण किया गया था, सम्राट उसका दान साधु संन्यासियों और तीर्थयात्रियों को देते थे। साथ ही ह्वेनसांग (Xuanzang) ने यह भी बताया कि जब कुम्भ मेले का भ्रमण करके वह अपने देश चीन लौट रहा था तब सम्राट हर्षवर्धन ने उन्हें कई रत्न और स्वर्ण आभूषण देना चाहा था, लेकिन ह्वेनसांग ने इसे लेने से इनकार कर दिया था।

कुम्भ की वैदिक प्रामाणिकता - पौराणिक विश्लेषण से यह साफ़ है कि कुम्भ पर्व एवं गंगा नदी आपस में सम्बंधित हैं। गंगा प्रयाग में बहती हैं परन्तु नासिक में बहने वाली गोदावरी को भी गंगा कहा जाता है, इसे हम गोमती गंगा के नाम से भी पुकारते हैं। क्षिप्रा नदी को काशी की उत्तरी गंगा से पहचाना जाता है। यहाँ पर गंगा गंगेश्वर की आराधना की जाती है। इस तथ्य को ब्रह्म पुराण एवं स्कंद पुराण के २ श्लोकों के माध्यम से समझाया गया है - "विन्ध्यस्य दक्षिणे गंगा गौतमी सा निगद्यते उत्तरे सापि विन्ध्यस्य भगीरत्यभिधीयते।"

"एव मुक्त्वा गता गंगा कलया वन संस्थिता गंगेश्वरं तु यः पश्येत स्नात्वा शिप्राम्भासि प्रिये।"

ज्योतिषीय गणना के अनुसार कुम्भ का पर्व ४ प्रकार से आयोजित किया जाता है :

१. कुम्भ राशि में बृहस्पति का प्रवेश होने पर एवं मेष राशि में सूर्य का प्रवेश होने पर कुम्भ का पर्व हरिद्वार में आयोजित किया जाता है।

"पद्मिनी नायके मेषे कुम्भ राशि गते गुरोः । गंगा द्वारे भवेद योगः कुम्भ नामा तथोत्तमाः।।"

२. मेष राशि के चक्र में बृहस्पति एवं सूर्य और चन्द्र के मकर राशि में प्रवेश करने पर अमावस्या के दिन कुम्भ का पर्व प्रयाग में आयोजित किया जाता है।

“मेष राशि गते जीवे मकरे चन्द्र भास्करौ । अमावस्या तदा योगः कुम्भख्यस्तीर्थ नायके ।। "

एक अन्य गणना के अनुसार मकर राशि में सूर्य का एवं वृष राशि में बृहस्पति का प्रवेश होने पर कुम्भ पर्व प्रयाग में आयोजित होता है।

३. सिंह राशि में बृहस्पति के प्रवेश होने पर कुम्भ पर्व गोदावरी के तट पर नासिक में होता है।

"सिंह राशि गते सूर्ये सिंह राशौ बृहस्पतौ । गोदावर्या भवेत कुंभों जायते खलु मुक्तिदः ।।"

४. सिंह राशि में बृहस्पति एवं मेष राशि में सूर्य का प्रवेश होने पर यह पर्व उज्जैन में होता है।

"मेष राशि गते सूर्ये सिंह राशौ बृहस्पतौ । उज्जियन्यां भवेत कुंभः सदामुक्ति प्रदायकः ।।"

पौराणिक ग्रंथों जैसे नारद पुराण (२/६६/४४), शिव पुराण (१/१२/२२/-२३) एवं वाराह पुराण (१/७१/४७/४८) और ब्रह्मा पुराण आदि में भी कुम्भ एवं अर्द्ध कुम्भ के आयोजन को लेकर ज्योतिषीय विश्लेषण

उपलब्ध हैं। कुम्भ पर्व हर ३ साल के अंतराल पर हरिद्वार से शुरू होता है। कहा जाता है कि हरिद्वार के बाद कुम्भ पर्व प्रयाग, नासिक और उज्जैन में मनाया जाता है। प्रयाग और हरिद्वार में मनाये जाने वाले कुम्भ पर्व में एवं प्रयाग और नासिक में मनाये जाने वाले कुम्भ पर्व के बीच में ३ सालों का अंतर होता है।

कुम्भ तीर्थ का महत्व - कुम्भ मेला हिंदू तीर्थ यात्रियों का एक बड़ा तीर्थ स्थान है। कुम्भ को विश्व के सबसे बड़े तीर्थ आयोजन के रूप में उल्लेखित किया जाता है।

'तरति पापादिकं यस्मात्॥' अर्थात जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से तर (मुक्त) जाए, उसे 'तीर्थ' कहते हैं।

अथर्ववेद में तीर्थों का माहात्म्य बताते हुए कहा गया है - 'तीर्थैस्तरन्ति प्रवति महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति॥' अर्थात् बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाले पुण्यात्माओं को जो स्थान प्राप्त होता है, शुद्ध मन से तीर्थयात्रा करनेवाले को भी वही स्थान प्राप्त होता है।

महाभारत के वनपर्व में वेद व्यासजी ने तीर्थयात्रा का महत्त्व बताते हुए कहा है - 'तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते॥' अर्थात् तीर्थयात्रा पुण्यकार्य है, यह सब यज्ञों से बढ़कर है।

वामन पुराण में वर्णन आया है - 'तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम्॥'

अर्थात् तीर्थों का स्मरण पुण्य देनेवाला, तीर्थदर्शन पापों का नाश करनेवाला और तीर्थस्नान मुक्तिकारक है। स्कंद पुराण के काशीखंड में उल्लेख है - 'स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मण॥' अर्थात् मन के अंदर यदि दोष भरा है तो वह तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता। कुम्भ के साथ ही अर्धकुम्भ का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है - चतुरा: कुंभा चतुर्धा ददामि (अथर्ववेद- ४/३४/७)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुम्भ पर्व का महत्व सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है ।

कोरोना महामारी और हरिद्वार कुम्भ - इतिहास साक्षी है कि वैदिक काल से हमारे यहाँ कुम्भ पर्व का आयोजन होता चला आ रहा है। परंतु किसी भी प्रकार की महामारी भारत में कभी भी दिखाई नहीं पड़ी है ।यह सब पश्चिमी सभ्यताओं और पश्चिमी देशों से ही उत्पन्न होती है जो यहाँ तक फैलती है ।वर्तमान में भी कोरोना महामारी इसका एक जीवंत उदाहरण है। इसी महामारी के दौरान ही हरिद्वार में कुम्भ पर्व का आयोजन किया जा रहा है जिसके चलते केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा बहुत से विशेष प्रबंध किए गए हैं।

कोरोना काल में आयोजित होने जा रहे हरिद्वार महाकुम्भ २०२१ की तिथि निर्धारित कर दी गई है। हर बार माह तक लगने वाले कुम्भ मेला, इस बार संक्रमण के खतरे को देखते हुए केवल एक माह के लिए आयोजित होगा। कोरोना की रोकथाम और केंद्र सरकार की गाइडलाइन को देखते हुए राज्य सरकार ने मेले की अवधि घटाने का निर्णय लिया है। कुम्भ मेले में आने वाले श्रद्धालुओं के लिए सरकार द्वारा विस्तृत गाइड लाइन पहले ही जारी की जा चुकी है।

राज्य सरकार ने कुम्भ मेले के लिए अब एक अप्रैल से ३०अप्रैल तक की अवधि निर्धारित की है। मुख्य सचिव ओमप्रकाश की अध्यक्षता में हुई उच्च स्तरीय बैठक में यह निर्णय लिया गया। जल्द ही कुम्भ मेले के

सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा आधिकारिक अधिसूचना जारी कर दी जाएगी। कोरोना संक्रमण को देखते हुए पहले कुम्भ मेले की अवधि २७ फरवरी से २७ अप्रैल तक प्रस्तावित की गई थी। हालाँकि इससे पहले कुम्भ मेला जनवरी से शुरू होकर अप्रैल तक, चार महीने के लिए आयोजित होता था।

हरिद्वार महाकुम्भ में महाशिवरात्रि ११ मार्च २०२१ से शाही स्नान शुरू हो चुका है। कुल चार शाही स्नान में से अभी तीन शाही स्नान बाकी हैं। महाकुम्भ का दूसरा शाही स्नान सोमवती अमावस्या (१२ अप्रैल) को होगा, जबकि चौथा यानी आखिरी शाही स्नान चैत्र पूर्णिमा के दिन होगा। हरिद्वार महाकुम्भ के लिए राज्य सरकार व केंद्र सरकार की ओर से दिशा-निर्देश भी जारी कर दिए हैं। गाइडलाइन के अनुसार, गंगा स्नान के लिए आने वाले लोगों को ७२ घंटें पहले तक आरटीपीसीआर प्रणाली से की गई कोरोना वायरस जाँच की निगेटिव रिपोर्ट दिखाना अनिवार्य है।

१. पहला शाही स्नान - ११ मार्च २०२१, दिन गुरुवार, त्योहार- महाशिवरात्रि। शास्त्रों के अनुसार, पृथ्वी पर गंगा की उपस्थिति का श्रेय भगवान शिव को जाता है। यही कारण है कि इस दिन पवित्र नदी में स्नान करने का विशेष महत्व है।

२. **दूसरा शाही स्नान –** १२ अप्रैल २०२१, दिन सोमवार, त्योहार- सोमवती अमावस्या। सोमवती अमावस्या पर गंगा स्नान का विशेष महत्व है। ऐसा माना जाता है कि चंद्रमा जल का कारक है, जल की प्राप्ति और सोमवती को अमावस्या पर अमृत माना जाता है।

३. तीसरा शाही स्नान - १४ अप्रैल २०२१, दिन बुधवार, त्योहार- मेष संक्रांति और बैसाखी। इस शुभ दिन पर, नदियों का पानी अमृत में बदल जाता है। ज्योतिष के अनुसार, इस दिन पवित्र गंगा में एक पवित्र डुबकी कई जीवन के पापों को नष्ट कर सकती है।

४. **चौथा शाही स्नान -** २७ अप्रैल २०२१, दिन मंगलवार, त्योहार- चैत्र पूर्णिमा। पवित्र गंगा में स्नान करने के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण दिनों में से एक है और इसे 'अमृत योग' के दिन के रूप में जाना जाता है।

रजिस्ट्रेशन कराना होगा अनिवार्य - हरिद्वार महाकुम्भ जाने वाले श्रद्धालुओं को राज्य सरकार के कुम्भ मेला से सम्बन्धित वेब पोर्टल पर भी पंजीकरण करना अनिवार्य होगा और पंजीकरण सम्बन्धी ई-पास भी अपने पास रखना होगा। साथ ही आरोग्य सेतु ऐप को भी अपने मोबाइल में चालू रखना होगा।

गंगा स्नान और पूजन का महत्त्व - गंगा नदी हिंदुओं के लिए देवी और माता समान है। इसीलिए हिंदुओं के लिए गंगा स्नान का बहुत महत्व है। गंगा जीवन और मृत्यु दोनों से जुड़ी हुई है इसके बिना हिंदू संस्कार अधूरे हैं। गंगाजल अमृत समान है। इलाहाबाद कुम्भ में गंगा स्नान, पूजन का अलग ही महत्व है। अनेक पर्वों और उत्सवों का गंगा से सीधा सम्बन्ध है। मकर संक्राति, कुम्भ और गंगा दशहरा के समय गंगा में स्नान, पूजन, दान एवं दर्शन करना महत्त्वपूर्ण माना गया है। गंगाजी के अनेक भक्ति ग्रंथ लिखे गए हैं जिनमें श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम एवं गंगा आरती बहुत लोकप्रिय हैं। गंगा पूजन एवं स्नान से रिद्धि-सिद्धि, यश-सम्मान की प्राप्ति होती है तथा

समस्त पापों का क्षय होता है। मान्यता है कि गंगा पूजन से मांगलिक दोष से ग्रसित जातकों को विशेष लाभ प्राप्त होता है। गंगा स्नान करने से अशुभ ग्रहों का प्रभाव समाप्त होता है। अमावस्या दिन गंगा स्नान और पितरों के निमित्त तर्पण व पिंडदान करने से सद्गति प्राप्त होती है और यही शास्त्रीय विधान भी है। हिंदू धर्म में ऐसी मान्यता है कि कुम्भ स्थल के पवित्र जल में स्नान करने से मनुष्य के सारे पाप-कष्ट धुल जाते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है। गंगाजी में स्नान करने से सात्विकता और पुण्यलाभ प्राप्त होता है।

गंगाजल का महत्व - अर्धकुम्भ प्रयाग तथा हरिद्वार में ही क्यों होता है? इस प्रश्न के उत्तर में गंगा के पवित्र जल एवं पर्यावरण की ही प्रधानता है। हरिद्वार में गंगा, प्रयाग में गंगा।

गंगा जल को वर्षों तक रखने के बाद भी इसमें कीड़े नहीं पड़ते हैं और न ही दूषित होता है। हड्डियों को गला देने वाली क्षमता केवल इसी जल में है। हरिद्वार के ब्रह्मकुण्ड में लाखों कुन्तल हड्डियाँ डाली जाती है। महाभारत में गंगा जल को चन्द्रायण व्रत से हजार गुना अधिक गुणकारी बताया गया है।

चन्द्रायण सहस्त्रेण यश्चरेत काय शोधनम्।। य: पिबेद वै यथेष्टन्तु गंगाम्भ: स विशिष्यते।।

महर्षि चरके ने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' में लिखा है -

हिमवत्प्रभवा: पथ्य: पुण्या देवर्षि सेविता:। (चरक-सूत्रास्था २७/२१०)

पवित्र एवं देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित हिमालय से निकलने वाला गंगा जल पथ्य है।

बाणभट्ट ने अपने अष्टांग हृदयम में लिखा है - हिमवन्मलयोदभूता: पथ्यस्ता एवं च स्थिरा:।

हिमालय से निकलने वाला गंगा जल पथ्य है और वह कभी दूषित होने वाला नहीं है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध वैज्ञानिक चक्रपाणिदत्त ने लिखा है - यथोक्त लक्षण हिमालय-भवत्या देव गंगा पथ्यं।।

हिमालय से निकलने और स्वास्थ्य वृद्धि के लिए यथोक्त लक्षणों से युक्त होने के कारण गंगा जल पथ्य है। भण्डारकर ओरियन्टल इंस्टीट्यूट पूना में सुरक्षित भोजन कुतुल नामक हस्तलिखित ग्रन्थ में लिखा है - शीतं स्वादु स्वच्छमत्यतं रूच्य, पथ्य पाचनं पाप हारि। तृष्णा मोह ध्वसनं दीपनं च प्रसादते वारि भागीर थीयम्।। गंगा जल शीतल, स्वादिष्ट, स्वच्छ, अत्यंत रुचिकर पथ्य रोगी को देने योग्य, पाचन शक्ति बढ़ाने वाला, सब पापों का हरण करने वाला, मोह का नाश करने वाला, जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला, क्षुधा और बुद्धि को बढ़ाने वाला है।

फ्रान्सीसी डाक्टर डी.हेरेल, प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक ट्वेन, वर्लिन जर्मनी के डा.जे.ओलिवर(१९२४में) डॉ.ईएफके हिमान ने (१९३१ में) गंगा जल का परीक्षण वर्षों तक करने के बाद उपयोग में लाकर लिखा है कि गंगाजल में औषधि के सम्पूर्ण गुण विद्यमान् यथावत मिले। इसमें हर प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता है।

गंगा श्रद्धा आस्था के साथ-साथ जीवन धारा क्यों? वह इसलिए कि यमुना और गंगा दोनों के जल में कीटाणु नाशक क्षमता है। १८९४ में हुई इण्डियन मेडिकल कांग्रेस में भारतीय नदियों के कीटाणु नामक शोध पत्र में स्पष्ट किया गया कूप जल में कीटाणु बढ़ते है, जबकि दोनों नदियों के जल में कीटाणु नष्ट हो जाते है।

अब्दुल फजल अपनी आइने अकबरी पुस्तक में लिखते है: बादशाह अकबर गंगा जल को अमृत समझते थे। वे पीने तथा भोजन में गंगा जल का उपयोग करते थे।

<u>हरिद्वार कुम्भ यात्रा २०२१ : एक स्वार्गिक अनुभूति -</u> हम अक्सर सोचते रहते हैं कि दैनिक कार्यों से कभी थोड़ा सा अवकाश मिलेगा तो हम तीर्थ यात्रा को जाएँगे । अमूमन हम तीर्थ यात्राओं को वृद्धावस्था के लिए ही छोड़ देते हैं। परंतु मेरा ऐसा मानना है कि जब भी इस प्रकार के अवसर प्राप्त हों तो उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए । वैसे तो सब कुछ ईश्वरेच्छा से सम्पन्न होता है। मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हूँ कि मुझे जीवन में पहली बार कुम्भ पर्व देखने का एक अविस्मरणीय अवसर प्राप्त हुआ।

इस साल हरिद्वार में लगने वाले पूर्ण कुम्भ का पहला शाही स्नान ११ मार्च २०२१ को महाशिवरात्रि के दिन होना था।

हम १० मार्च को ही हरिद्वार के लिए निकल गए। गंगा किनारे पर भजन कीर्तन का जो स्वार्गिक आनंद प्राप्त हुआ उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है। माँ गंगा की कल-कल करती आवाज, अथाह जल राशि, निरंतर गतिशीलता, अद्‌भुत सौंदर्य हमें बहुत कुछ सिखाता है । वास्तव में ही गंगा हमारी माँ है क्योंकि वह हम सभी के अवगुणों को, हमारी गंदगी को अपने अंदर समेट लेती है। शिवरात्रि के दिन गंगा तट पर ही गंगाजल से रुद्राभिषेक होना बहुत बड़ा सौभाग्य प्रदान करने वाला है। शिवरात्रि का दिन हो, गंगा का किनारा हो और कुम्भ पर्व हो ऐसा दुर्लभ संयोग बहुत कम मिलता है। इसी के साथ विद्वान पंडितों के द्वारा सस्वर रुद्राष्टकम, शिव तांडव स्त्रोत्रम का पाठ हो तो इस आनंदानुभूति के बारे में क्या कहा जा सकता है। तत्पश्चात् गंगा तट पर ही हवन आदि धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा जितनी आत्मिक शांति और संतुष्टि प्राप्त हुई वह किसी स्वर्गिक आनंद से कम नहीं है । अपने अनुभव से मैं यह कहना चाहती हूँ कि हम सभी को जीवन में एक बार कुम्भ पर्व का भ्रमण अवश्य करना चाहिए। धन्य है हमारी सत्य सनातन धर्म संस्कृति, हमारी परम्पराएँ, हमारे मूल्य, हमारे पर्व आदि जो समय-समय पर आकर हम सभी को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करते हैं। यही तो मानवीयता है, मानव धर्म है। धन्य है भारत भूमि। सादर वंदन, अभिनदंन, मेरा भारत महान ।

तुम्हें लिखने में

धर्मपाल महेंद्र जैन

मैं प्रेम को कभी
शब्दों में नहीं लिख पाया
रेले की तरह
सब कुछ बह जाता था उसी क्षण
पूरे आवेग के साथ
कुछ ठहरता नहीं था
जो पकड़ पाता मैं शब्दों में।

लगा कि मैं प्रेम में डूबा पड़ा हूँ
किसी राग की तरह
जो ठुमरी में उलझा है
बिना आलाप के और
उसे वहाँ से निकलना ही नहीं है।

तुममें रहकर मैं
तुम्हें लिख नहीं पाता
और तुममें रहे बिना
कुछ लिखना बेमानी है
कुछ पन्ने हैं जो लिखे-फाड़े
पुनः जोड़े, फिर से लिखे और

फिर-फिर फाड़ दिए
तुम्हें लिखने में।

हर बार बदल गए शब्द, राग
बदल गई ताल
प्रेम की हमराह होने में।

कोई शब्द ऐसे नहीं बचे
जिन्हें काट-काट कर
फिर से नहीं लिखा।
अब सारे शब्द कटे पड़े हैं।

यह जानते हुए कि
आदि से लिखा है और
अनंत तक लिखा जाएगा प्रेम को
यह जानते हुए कि
किसी भी भाषा में
कोई भी शब्द नहीं लिख पाये
प्रेम को सही-सही
ऐ दोस्त आओ मिल कर लिखते हैं
कोई शब्द
जो प्रेम को लिख जाए
उसके आवेग के साथ।

विश्व पटल पर हिंदी एवं भारतीय संस्कृति

डॉ. मीना यादव

विश्व भाषा के रूप में हिंदी सम्पूर्ण विश्व की तीसरी भाषा है। इसे हिंदी के लोग अपनी संस्कृति का अंग मानते हैं। आज विश्व के लगभग १५० देशों में हिंदी भाषी तथा हिंदी प्रेमी हैं। मॉरिशियस की संसद ने १२ नवम्बर,२००२ को एक अधिनियम द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की थी, जिसका मुख्य उद्देश्य हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रोन्नत करना। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी विश्व भाषा है। मानवीय भावनाओं, सम्वेदनाओं, संकल्पनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं के सहज, सरल रूप व्यक्त कर देने के कारण हिंदी भाषा प्रतिदिन प्रगति की और अग्रसर है। वैज्ञानिकता एवं शाश्वत मूल्यधारिता के अनुपम गुणों से युक्त यह भाषा भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म की पुनीत धरोहर है। यह महासागरवत अथाह शब्द भंडार लिए हुए है। इसमें अनेक भाषाओं की शब्द सीमाएँ आकर मिलती हैं तथा आत्मसात् हो गयी हैं। इसी समाहित्व के महान् गुण के कारण उसका शब्द भंडार निरंतर बढ़ता चला जाता है।

विश्व पटल पर हिंदी के बढ़ते प्रभाव को देखें तो सम्पूर्ण भारत में तो इसका प्रयोग हो ही रहा है इसके साथ ही मॉरीशस, फ़िजी, बहरीन, संयुक्त अरब अमीरात, कनाडा, अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, सूरीनाम, कुवैत, सिंगापुर, दक्षिण अफ़्रीका, चीन और ऑस्ट्रेल्या तथा अनेक यूरोपीय देशों में बसे लाखों लोगों द्वारा उपयोग किया जा रहा है। निःसंदेह हिंदी भाषा अपनी सरलता, सांस्कृतिक सम्पन्नता तथा अध्यात्म प्रधान गुणों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरंतर लोकप्रिय हो रही है। विश्व के ४० से अधिक देशों के ६०० से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है।

संस्कार और आदर्शों से समृद्ध हिंदी भाषा की सौरभ विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षार्थियों को सौरभान्वित कर रही हैं। वहाँ के उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी भाषा पर डिप्लोमा व डिग्री पाठ्यक्रम संचालित हैं। भारतीय संस्कृति व अध्यात्म के शिक्षण हेतु प्रति वर्ष लगभग ५००० विद्यार्थी हिंदी सीख रहे हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो से सम्बद्ध साउथ ऐशियन लैंग्विज यूनिवर्सिटी ऑफ़ वॉशिंगटन में एम. ए. पत्रकारिता के पाठ्यक्रम हिंदी में चल रहे हैं। यूनिवर्सिटी ओफ़ टोक्यो, जापान, अमेरिका आदि में सैकड़ों विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिंदी शिक्षण हेतु प्रवेश ले रहे हैं। धारा प्रवाह हिंदी बोलने व सिखाने के लिए भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य वाली हिंदी फ़िल्में दिखायी जाती हैं। मॉरीशस में सन १९२६ में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना तिलक विद्यालय के रूप में हुई। इसके बाद विश्व हिंदी सम्मेलनों ने हिंदी को विश्व भाषा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी विश्व भाषा है। मॉरीशस हिंदी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष श्री जयनारायण राम के शब्दों में "हिंदी उपनिषद, रामायण और गीता की बेटी बन कर आयी और धर्म एवं संस्कृति का अंग बनकर अभी भी जीवित है।" हिंदी की माधुर्यता को रेखांकित करते हुए प्रमुख चेक शिक्षाविद डॉ. ओदोलेन स्मेकेल का कहना है – "हिंदी ज्ञान मेरे लिए अमृतपान है, जितनी बार भी पीता हूँ उतनी बार लगता है पुनः जीता हूँ।"

हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में हिंदी साहित्य के साहित्यकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें प्रवासी हिंदी साहित्यकार जैसे फ़ीजी के कमला प्रसाद मिश्र, मॉरीशस के अभिमन्यु अनंत, राजेंद्र अरुण, सूरीनाम के ब्रजेंद्र कुमार भगत, मुंशी रहमान खान आदि प्रमुख हैं। टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. पथोओ दोई ने भी हिंदी प्रचार प्रसार के लिए सराहनीय परिश्रम किया है। फ़्रान्स के गार्सा द तासी के हिंदी साहित्य के इतिहास, जॉर्ज ग्रियसन के दि वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ Northern इंडिया। जयशंकर प्रसाद की

कामायनी, प्रेमचंद के गोदान तथा तुलसी के रामचरितमानस का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद होना हिन्दी को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मील के पत्थर सिद्ध हो रहे हैं।

अनहोनी शाम

डॉ. उमानाथ तिवारी

अनहोनी शाम, झेलम का किनारा
मछुओं के उभरते हुए बोल
अब भी हैं याद मुझे
गुलमर्ग की पहाड़ियों के पीछे
सूरज थककर जब लेटा था
है याद मुझे
नयनों से नयनों की भाषा पढ़
पहले पहल, जबकि मैंने ही खुद पाई थी
अपने ही दिल के धड़कने की ख़बर
ग़मगीन उसी वक़्त से
मैं रहता हूँ।

मन का भरम

शन्नो अग्रवाल

जुड़ती जाती हैं
कई यादें
यादों के नये
खजाने में।

बेबाक जिंदगी
जब कभी
गुनगुनाती है
कुछ देर को
अनजाने में
तो समय जैसे
थम-सा जाता है
किसी खामोश
वीराने में।

बारिश की
फुहार जैसे
कुछ पल
मिल जाते हैं
तप्त हृदय को
सिंचित करने
और
मरहम-सा
बन जाते हैं
जख्मों को
भर जाने में।

मरुथल में होतीं
कुछ बूँदें काफी
प्यासे की
प्यास बुझाने में
चातक को मिलती
कुछ राहत
अपना मन
भरमाने में।

जुड़ती जाती हैं
कई यादें
यादों के नये
खजाने में।

जागृति

डॉ. स्नेह ठाकुर

सामने की पहाड़ी पर बारूद का धमाका हुआ. पहाड़ी की देह हर कहीं से अंग-भंग हो टूट-टूट कर बिखर गई. कभी ये पहाड़ियाँ चाँदनी की उजास में नीचे बहती नदी के दर्पण में अपने रूप-यौवन से मदमाती मांसल देह के लावण्य को निहार-निहार मुग्ध हुआ करती थीं और अब अपनी घायल विकृत देह को विस्फारित नेत्रों से बेबस-सी टकटकी बाँधे सिर्फ़ निहारे जा रही हैं.

वातावरण में गर्मी की उमस भरी ही थी. पेड़ों ने अपनी हरी-भरी वेश-भूषा उतार दी थी और अब वो किसी तपस्वी की भाँति हड्डियों के ढाँचे में खड़े साधनारत थे.

धरा की कुर्सी के हत्थे पर दुबका-सा बैठा धूप का टुकड़ा अब खिड़की के सींखचों से जा लिपटा था और किसी भी क्षण वहाँ से कूदने की तैयारी में था. धरा का सिर चकरा रहा था. कमरे की दीवारें बहुत सिमट गई थीं और उसकी छत धरा के कंधों पर बेहद दबाव डाल रही थी. धरा की भी मनोदशा धूप के टुकड़े के समान ही खिड़की से कूदने की हो रही थी. भीतर-ही-भीतर दर्द की एक लम्बी-सी लकीर खिंचती चली जा रही थी....एक ऐसी एकरस, सपाट, लम्बी-सी लकीर जो हृदयगति बंद होने पर मॉनीटर की स्क्रीन पर खिंचती चली जाती है....कहीं पर भी कोई उतार-चढ़ाव नहीं. हाँ! सिर्फ़ अन्तर इतना है कि उसे दर्द का पूर्ण अहसास है. दर्द की तीव्रता उतनी ही है क्योंकि वो तो अभी जिंदा है. यदि मर गई होती तो क्या वह दर्द के इस अहसास से परे न होती!

धरा सोच रही थी कि स्मृति के कपाटों को बंद करना तो उसने कभी का सीख लिया था. एक यही साधन तो था जो सुख-संतोष का विकल्प बचा था. फिर आज इतनी बेचैनी क्यों? क्यों रह-रहकर अवन्ती का संवेदनहीन चेहरा उसे मुँह चिढ़ा रहा है? हालाँकि मुँह से अवन्ती ने कुछ नहीं कहा था पर उसके चेहरे के हाव-भाव ही स्पष्ट भाषा में सब कुछ कह गए थे. बहुत बार मन की तह तक जाने के लिए शब्दों की सीढ़ी की ज़रूरत नहीं पड़ती. अवन्ती की मुखाकृति देख कुछ भी सोचने या कहने-सुनने की आवश्यकता या गुंजाइश ही नहीं रह गई थी....मेरे हाथ की सिर्फ़ खरोंच-मात्र देख अवन्ती इस तरह दूर छिटक कर खड़ी हो गई थी मानो वह खरोंच न हो वरन् कोई ज़हरीला सर्प फन फैलाए उस पर आक्रमण करने के लिए कटिबद्ध खड़ा हो....' अवन्ती के इस व्यवहार ने धरा के तन-मन को आहत कर विचलित कर दिया.

अभी तो धरा स्वयं ही अपनी बीमारी के प्रसंग से उभर नहीं पाई थी. जब से उसे पता चला है कि वह एच. आई. वी. पॉज़िटिव है, तभी से तन और मन स्वयं से ही संघर्ष कर रहे हैं. ऊपर से यह समाजिक उपेक्षा! अवन्ती पहली महिला नहीं जिसने उसे अछूत होने का अहसास कराया हो.

ढेर सारे प्रश्नों के सर्प-फन बार-बार उसे डस रहे थे. उत्तर की आतुर तलाश में प्रश्नों की बाड़ ही उसे घेर कर खड़ी हुई है. मुक्त नहीं हो सकी है उनसे वह. प्रश्नों ने हर वक़्त उसे चिढ़ाया ही है. उसके चेहरे पर टँगा गहरा विषाद इस बात का साक्षी था कि उसके सारे उत्तर शेष हो चुके हैं. सोच की धुंध काले बादलों-सी उमड़-घुमड़ रही थी. निपट अकेलापन अंकुराता रहा.

शाम रात की बाँहों में सिमट उसमें लीन होने की तैयारी में थी. मैदान पार धड़धड़ाती ट्रेन गुजरी. रेल के डिब्बों से झाँकती रोशनी नदी के वक्ष पर कँपकँपा गई. धरा की एकाग्रता भंग हुई. उसकी गहरी नि:श्वास गोधूलि के धुँधलके की पर्तों में आहिस्ता से होने के प्रतिवाद में झरोखे में रखे घोंसले में बैठी चिरैय्या ने पंख फड़फड़ाए, और फिर किसी किस्म का भय न देख पुन: अपने वक्ष में सिर छुपा कर बैठ गई.

सूने कमरे में अपनी पदचाप सुनती धरा स्नानगृह की ओर चल दी. उसकी पलक की कोर में अभी भी आँसू का एक ढीठ क़तरा उलझ कर रह गया था. धरा ने सिर झटका और हथेली के पृष्ठ भाग से आँसू के पानी को

कान तक फैला कर उसका अस्तित्व ही मिटा दिया. दृढ़ता से मुँह धोया जैसे वह सारे दर्दीले विचार धो-पोंछ कर अपने से अलग कर देना चाहती है. धरा स्वयं में बड़बड़ाई. हालाँकि अपनी ही आवाज़ उसे बहुत पराई लगी क्योंकि शब्द तो शब्द ही होते हैं. पर जब हम शब्दों को अपना आपा सौंपते हैं तभी तो वे अर्थवान बनते हैं, नहीं तो सिवा चिढ़ाने के उनके पास कुछ भी नहीं रहता.

अब तक धरा संयत हो चुकी थी. शब्द अर्थवान बन गए थे. आवाज़ थरथराहट का दामन छोड़ चुकी थी. विचार सशक्त हो गया था....'अपने अनकिए अपराधों के लिए बार-बार क्यों दु:खी होऊँ? क्यों अपराधी न होने पर भी अपराधिता-सी दूसरों के सामने झुकती ही रहूँ?....और फिर उनके सामने जिनका सम्वेदना से कहीं दूर-दूर का भी रिश्ता नहीं है....जो न बात जानते हैं और ना ही जानना चाहते हैं....अपने में ही सिमटा, कूपमंडूक स्वार्थी वर्ग. हाँ, यदि हिमालय-सी ऊँचाई वाला कोई मिल जाए तो एक बार क्या, सौ बार झुकने में भी परेशानी तो क्या वरन् आनंद ही मिलता है. पर अमानुषिक व्यवहार वाले बौनों के सामने घुटने टेकना तो अपने को बिना बात ही और छोटा बनाना है.

जिस आत्मविश्वास से धरा वसुधा के घर पहुँची थी वो आत्मविश्वास वहाँ पहुँचकर फिर डगमगाने लगा. कुछ ऐसी यादें हुआ करती हैं जो मस्तिष्क की शिराओं पर सपाट दीवार पर चढ़ती छिपकली की तरह चिपक जाती हैं. कभी-कभी न थमने वाला वक़्त भी लगता है कि थम कर रह जाता है और हम उसके गुज़रने के बाद भी उसी शिद्दत से ठगे-से देखते रह जाते हैं, महसूस करते हैं. लगता है कि धरती अपनी धुरी पर चक्कर काटना भूल गई है. भीतर की ज़मीन पर सहेजा हुआ धरा का आत्मविश्वास रेत के ढेर की भाँति भरभराकर गिरने लगा.

वसुधा के घर घुसने से पहले अहाते में खड़े अमलतास के गुच्छे के गुच्छे पीले फूल व बरामदे की जाफ़री से लिपटी वोगनविला के फूलों का रंगजाल छिन्न-भिन्न हो चुका था.

धरा सोच रही थी कि शायद उसने यहाँ आकर गलती करी. पर वो करती भी क्या? वसुधा दीदी धरा के लिए बड़ी बहन से भी बढ़ कर हैं. मन न होने पर भी वसुधा दीदी के मज़बूर करने पर धरा को आना ही पड़ा. जितनी बार धरा ने अपनी बीमारी के कारण पार्टी में आना नामंज़ूर किया उतनी ही बार वसुधा ने उसे उसी बीमारी का वास्ता दे पार्टी में आने पर मज़बूर किया.

'धरा! तुम एच.आई.वी. पॉज़िटिव हो, एड्स रोग की रोगिणी नहीं. तुम जानती हो कि इन दोनों में अन्तर है. हर वह इंसान जो एच.आई.वी पॉज़िटिव है, ज़रूरी नहीं कि वह एड्स रोग का शिकार बने ही बने. एच.आई.वी. ह्यूमन इम्यूनोडेफ़िशिएन्सी वॉयरस सालों-साल बिना किसी प्रत्यक्ष दृष्टिगत् प्रभाव के शरीर में रह सकता है. कई व्यक्तियों की शारीरिक रचना में एच.आई.वी. इन्फ़ैक्शन, संक्रमण किसी भी लक्षण के बिना रह सकता है. वहीं कुछ व्यक्ति एड्स सम्बंधित बीमारियों के लक्षण प्रकट करते हैं लेकिन उन्हें घातक मरणासन्न बीमारियाँ नहीं हैं.'

'जैसा कि तुम जानती हो धरा एड्स का मतलब है - एक्वायर्ड इम्यून डेफ़िशिएन्सी सिन्ड्रम. एच.आई.वी. कभी-कभी इस रोग का कारण बनता है. एड्स वो स्थिति है जब शरीर का बीमारी के प्रति डिफैंस सिस्टम इतना नीचे गिर जाता है कि वह घातक बीमारियाँ पनप उठने पर मरणासन्न अवस्था में अपनी पूरी शक्ति से बीमारी के उन कीटाणुओं से लड़ने में समर्थ नहीं हो पाता है.' वसुधा ने दलील देते हुए कहा.

'ठीक है, पर मैं इस रोग की रोगिणी कभी भी हो सकती हूँ.' धरा का बुझा-बुझा-सा उत्तर था.

'हाँ, हो तो सकती हो पर पहली बात तो यह है कि अभी तो तुम्हें एड्स नहीं है. रहा हो सकने की बात तो वह तो कभी भी कुछ भी हो सकता है. भविष्य के दर्पण में किसने झाँका है! कौन पूर्ण निश्चय के साथ, अक्षरत: सत्यता के साथ भविष्यवाणी कर सकता है? दूर की छोड़ दो हमें तो अगले क्षण का भी नहीं पता. क्या तुम पूर्ण विश्वास और निश्चय के साथ कह सकती हो कि अगले ही क्षण कोई भी अप्रत्याशित घटना तुम्हारे साथ

नहीं हो सकती? इस बिल्डिंग से निकल केले के छिलके पर फिसल तुम मौत के अंक में नहीं समा सकती? या फिर किसी दुर्घटना का शिकार नहीं हो सकती? सम्भावनाएँ तो बहुत होती हैं. जीवन ही सम्भावनाओं का भंडार है. हमें ठोस तथ्यों पर जीवन जीना है. केवल सम्भावनाओं पर आधारित जीवन हमें हर क्षण परेशानी में ही डालेगा. अत: पहले वर्तमान की समस्या से तो जूझ लो. और अगर तुम्हें एड्स होता भी तो भी तुम सिर्फ़ पार्टी में जाने से ही अपना रोग किसी दूसरे को नहीं दे सकती. हाथ मिलाने से, गले मिलने से, यहाँ तक कि चुम्बन लेने से, एक-दूसरे से खाना-पीना मिल-बाँट कर खाने से, शौचालय प्रयोग करने से, मच्छरों या कीड़ों के काटने से, स्वीमिंग पूल में तैरने आदि बातों से लोगों को एच.आई.वी. संक्रमण या एड्स का भय नहीं है. यह वॉयरस केवल खून, सीमेन व वज़ाइनल फ्लुइड्स के द्वारा ही दिया जा सकता है. पसीने में, सलाइवा में या शरीर के विभिन्न फ्लूइड्स में इतना वॉयरस नहीं है कि इनके द्वारा एच.आई.वी. एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संक्रमणित हो सके. एच.आई.वी. या एड्स के रोगी की सुई प्रयोग में लाना बहुत ही ख़तरनाक है. सबसे महत्वपूर्ण बात है उन तथ्यों की जानकारी जिन्हें ज़्यादा संकट वाले 'हाई रिस्क' या कम संकट वाले 'लो रिस्क' कहा जाता है. संक्रमण के तथ्यों का ज्ञान और हर प्रक्रिया में सुरक्षापूर्ण व्यवहार करना तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए लाभदायक है, न कि अपने को पूर्णरूपेण अपनी ही खाल में बंद कर लेना. तुम्हें भी जीने का हक़ है.'

'अगर मुझे जीने का हक़ होता तो ईश्वर मुझे एड्स ही क्यों देता?....धरा के स्वर में निराशा-भरी कड़ुवाहट घुल गई थी.

'कहा न कि तुम्हें एड्स नहीं है.' वसुधा बीच में ही काटते हुए बोल पड़ी.

'वसुधा दीदी! सब लोग तुम्हारे जैसे नहीं है. तुम तो जानती ही हो कि समाज में किस तरह लोग मुझसे कटने लगे हैं. लगता है कि अछूत वंशावली में एक नया वंश जुड़ गया है. लोग पारम्परिक अछूतों को तो शायद फिर भी कुछ ढील दे दें, यदि अछूतों से हमदर्दी के लिए ना भी, तो स्वार्थवश अपनी सुख-सुविधाओं की परितृप्ति के लिए ही. पर एड्स के अछूतों के भाग्य में तो वह भी नहीं.'

'हरएक जात से आए एड्स के रोगियों की एक ही जात बन गई है....अछूत जात....जो वंशानुगत नहीं है. अनेकानेक जातों के लोग एक ही कटघरे में लाकर छोड़ दिए गए हैं जिन्हें तथाकथित अछूत कहा तो नहीं जाता पर माना ज़रूर जाता है. एक तरफ़ तो हम जातिवाद को भारत से समाप्त करना चाहते हैं. मानव सिर्फ़ मानव है, इस सिद्धांतवाद पर चलना चाहते हैं. अछूतों का उद्धार कर उन्हें पढ़ा-लिखा शिक्षित कर, उच्च पदासीन कर, उच्च स्तर पर लाना चाहते हैं. हरिजन की परिभाषा गाँधी जी से ले अछूतों को हरि का जन बनाना चाहते हैं जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है. अच्छे मानव की गाँधी जी कि परिभाषा रोज गाते हैं....वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीर पराई जाने रे....तो एड्स के रोगियों का दु:ख हम क्यों नहीं जान पा रहे? क्यों हमारा बिना बात बहिष्कार होता है?'

'इसीलिए तो कहती हूँ कि तुम्हें पार्टी में आना ज़रूरी है. और सिर्फ़ इसी में ही नहीं, बाकी आनेवाली पार्टियों में भी आना होगा.' वसुधा धरा का पीड़ित चेहरा देखते हुए आगे बोली, 'मुझे पता है कि आने पर तुम्हें बहुत मानसिक कष्ट होता है, पर यह कष्ट तुम्हें अपने लिए व आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी उठाना ही पड़ेगा. जो लोग आज तुम्हारी उपेक्षा कर रहे हैं वो अनजाने में ही ऐसा कर रहे हैं.'

'क्या मतलब?'

'मतलब यह' वसुधा ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'ये लोग अपनी अज्ञानता से तुम्हें दु:ख पहुँचा रहे हैं. इन्हें रोग के बारे में यह तो ज्ञात है कि एड्स एक भीषण रोग है, जो कि अभी तक सचमुच है भी जब तक कि इसका पूर्णरूपेण निदान नहीं निकल आता. पर इसके संक्रमण के बारे में बहुत-सी गलतफहमियाँ हैं और उन्हीं

गलतफहमियों का शिकार हो कर लोग इनके रोगियों से ऐसा अनुचित, अमानवीय, दुर्व्यवहार करते हैं. हमें इन्हें समझाना है.'

वसुधा की बात सुन धरा फफककर रो पड़ी, 'वसुधा दीदी! हम एक-दो नारियाँ समाज को क्या समझा पाएँगी?'

'नारी प्रेरणा है. नारी शक्ति है. वह कमज़ोर नहीं है. वह कोई लुभावना खिलौना भी नहीं है. जब-जब नारी ने अपनी ताकत को पहचाना है तब-तब समाज में इसने सम्मानित स्थान पाया है. इसलिए अपने को कभी कमज़ोर और अकेला मत समझो. तुम्हारी आँखों में जो समुंदर उमड़ पड़ना चाहता है, मैं चाहती हूँ कि यह सोता फूट जाए और तुम्हारा जी हल्का हो जाए. इसके बाड़ तुम डटकर समाज में एड्स के प्रति अज्ञानता से लड़ो. हमें यह बीड़ा उठाना है कि हम एड्स के फैलते रोग को रोकें और साथ ही साथ एड्स के रोगियों के प्रति जो गलत धारणाएँ बनी हैं, जो निर्मूल भय व आशंकाएँ हैं, उनका निराकरण करें जिससे इन रोगियों के बचे-खुचे दिन शांति से गुज़र सकें.'

'यदि हम ऐसा न कर सकें तो एच.आई.वी. और एड्स से व्यथित व्यक्ति मज़बूरन अपने ही तहखानों में घुस जाएँगे जब वो इन रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के साथ अपराधियों जैसा सुलूक होता देखेंगे. हमें आपस में समझदारी और विश्वास का भाव जगाना है. शिक्षा और विचार-विमर्श ही इससे छुटकारा दिला सकते हैं. शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर छिपाने से काम नहीं चलेगा. वास्तविकता का सामना तो करना ही पड़ेगा. अब तो एड्स ने 'टाइम बॉम्ब' की तरह टिक करना शुरू कर दिया है. यदि देश ने सामूहिक रूप से एवं तीव्र गति से इसे 'डिफ्यूज़' करने की ओर कदम नहीं बढ़ाया, अग्रसर नहीं हुआ तो इसका एपीडेमिक ताक़त से विस्फोट होना निश्चित है, अवश्यम्भावी है.'

'धरा! याद है मैंने तुम्हें एक लेख सुनाया था. मैं उन एच.आई.वी. पॉज़िटिव व्यक्तियों के प्रति नतमस्तक हूँ जो अनेक वर्षों से इस रोग से संघर्ष कर रहे हैं. उनकी मानसिक जागरूकता के कारण ही अभी तक उनमें एड्स विकसित नहीं हुआ है. उन्होंने अपनी अज्ञानता से नहीं वरन् अपने ज्ञान के आधार पर इस रोग के साथ जीना सीख लिया है. यह उनके लिए मौत की सज़ा नहीं है. वैसे भी मौत का क्या भरोसा! कौन कब जाएगा यह किसे पता! मरने का क्षण तो किसी को भी नहीं मालूम. जनम और मरण का क्षण तो राम ही जाने.

वसुधा की बात सुन धरा कुछ आश्वस्त हो बोली, 'ठीक है वसुधा दीदी, आज से तुम्हीं मेरी गुरु हो, जो कहोगी वही करूँगी.' 'क्या विडम्बना है वसुधा दीदी! जिन्हें हम कभी अपना मानते चले आए हैं वे ही अचानक बेगाने हो जाते हैं और जिन्हें हम जानते भी नहीं थे या जिन्हें हम पराया मानते थे, कभी-कभी तो उनसे घृणा भी करते थे वे ही हमारे अपने हो जाते है, रिश्तों की गहराई व नज़ाकत समझना आसान नहीं. वर्षों का रिश्ता, सम्बन्ध, एक ही खून, इन सबका भी ज़मीन-जायदाद की तरह बँटवारा हो जाता है. अपनों का विश्वासघात न चैन से जीने देता है और न मरने.'

'मैं जो कच्चे घड़े की तरह सैंतकर रखी गई, साबुन के बुलबुले की तरह रूई जैसे फ़ाहों पर नाज़ुक फूलों जैसी रखी गई, आज वही मैं एक कोने में पटक दी गई हूँ. अपने ही घर में एक अर्थहीन सामान बन गई हूँ. अगर उनका बस चलता तो वह कोना देने में भी वे राजी न होते. रोटी-पानी देना भी वे शायद अपनी मज़बूरी ही समझते हैं, अंतरात्मा के कचोटने से या समाज द्वारा सम्भावित निंदा के भय से. कारण कुछ भी हो, दे तो देते हैं पर उनके देने का ढंग मुझे कितना आहत करता है, इससे उन्हें कोई वास्ता नहीं. अपनों के इस व्यवहार का शिद्दते एहसास मेरी कनपटियों को लोहे की सलाखों की तरह अकड़ा देता है. ज़िन्दगी साँप के फन की तरह डसती है. मौत बेलगाम तराने भर रही है और जिंदगी के लबों पर ताला पड़ा है. घटनाचक्र इतनी तेजी से घूमा

जैसे आँधी आई हो और फलते-फूलते वृक्ष की शाखाएँ अचानक ही चरमराकर टूट गई हों. भीतर विद्रोह के ज्वालामुखी धधके हैं, पर बाहर बर्फ़-सी चुप बनी रही. एक तहख़ाना बन गया है यह मन. सब उसमें दफ़न करती जा रही हूँ. कब्रगाह बन गई हूँ. कभी सोचती हूँ कि यह ज़िन्दगी क्या ऐसे ही कटेगी?'

वसुधा ने सांत्वना देने के लिए मुँह खोला पर कभी-कभी ऐन वक़्त पर शब्दों की पिटारी में से या तो एक भी शब्द निकलने को तैयार नहीं होता या फिर इतने शब्दों की भरमार हो जाती है कि वे एक-दूसरे में गुत्थम-गुत्था, 'ट्रैफिक जैम' के समान एक ही जगह अटके रह जाते हैं. टस से मस नहीं होते. गला अवरुद्ध हो गया था वसुधा का. शब्द भी बड़े अजीब होते हैं. सम्पूर्ण अर्थ-सम्पदा के बावजूद कई बार बहुत ही दीन-हीन, गरीब, मज़बूर-से हो जाते हैं. बाज वक़्त ऐसा होता है कि शब्द बहुत अक्षम, बहुत बौने लगने लगते हैं और तब मौन की भाषा ही वह सब कह देती है जिसे कहने के लिए हम बेहद आतुर होते हैं. वसुधा चुपचाप धरा की पीठ सहलाती रही.

धरा का ज्वालामुखी फूट पड़ा था. कुछ समय से एकत्रित तपता लावा बाहर आ रहा था. साँस और बेतरतीब हो गई और पेशानी पर पसीने के क़तरे ठंडी मिट्टी पर ओस की बूँदों की तरह फूट आए. कुछ संयत होकर धरा ही कहने लगी, 'वसुधा दीदी! लोगों के खौफ़ के मारे मैं भागती ही रही. मेरे पास चिलचिलाती धूप के सिवा कुछ भी नहीं था. मेरी ज़िन्दगी बिलकुल खाली हो गई थी जिसके दरवाज़े पर कोई दस्तक, कोई आहट नहीं हो रही थी. आज अपनी आँखों के बंद दरवाज़े मुद्दत के बाद खोले हैं. पहले कभी-कभार पल-दो-पल के लिए आँखों में चमक आई भी तो वह तुरंत बिजली की तरह कौंध कर लुप्त हो गई. ज़ुबान के साथ-साथ आँखों ने भी मौन व्रत धारण कर लिया था. अब तक तो वे खुलना भूल चुकी थीं. जब कभी खोलने की जरा-सी चेष्टा भी करी तो वो चींखती थीं, शोर मचाती थीं. समझ नहीं आता था कि ज़िन्दगी को फिर से कैसे शुरू करूँ! मैं उस औरत की कशमकश में पड़ गई थी जो आधा स्वैटर बुन चुकती है तो उसे अचानक एहसास होता है कि उसने स्वैटर पर जो नमूना बुना है, वह खूबसूरत नहीं लग रहा है, मन पसंद नहीं है, अब क्या करूँ? क्या इसे उधेड़ूँ? और यदि उधेड़ूँ भी तो क्या मेरे पास इतना समय है कि इसे पुन: अपनी पसंद का बुन सकूँ? या क्या बिन पसंद का ही इसे पूरा कर डालूँ? या फिर जो हो गया सो हो गया, अब इस आधे के ऊपर एक नई बुनाई डाल दूँ?....पर क्या वह ठीक लगेगा?....'

भरे घड़े-सी धरा झरझरा कर बह चली. क्या दुनिया ऐसे ही चलती चली जाएगी? वक़्त की झील में दर्द के कुछ लम्हें टूट कर गिरे हैं. क्या इससे बस कुछ लहरें उठेंगी और बाद में सब शांत हो जाएगा? मौत का सन्नाटा छा जाएगा? झील फिर से बेखबर सो जाएगी जैसे कुछ हुआ ही नहीं? धरा के भीतर के तट-बंध टूट गए थे और वह कगार पर खड़े, गिरते हुए उस वृक्ष-सी जिसकी मिट्टी नीचे से खिसक रही हो और वह सहारा ढूँढ रहा हो, वसुधा के वक्ष पर भरभरा कर गिरती हुई जा टिकी. धरा ने पीड़ा ढोती आँखों से वसुधा की आँखों में उतर झाँका. दोनों के बीच सवाल-जवाबों के, उनके आदान-प्रदान के जंगल उग आए थे.

वसुधा की आवाज़ में आत्मीय पिघलन उमड़ आई थी. समझाते हुए बोली, 'ऐसे निराश नहीं होते धरा. वक़्त हरदम एक-सा नहीं रहता. हालाँकि वक़्त तो वक़्त ही है पर यह कमबख़्त वक़्त बड़ा ही अज़ीबोगरीब है. यद्यपि कि स्वयं में तो यह सबके लिए समान ही है, इसकी सुई किसी के लिए न तो कभी धीमी होती है और ना ही कभी किसी के लिए अपनी गति बढ़ाती है. हर किसी के दु:ख-सुख से बेख़बर समान गति से ही चलती रहती है तथापि इसका एहसास हर किसी के लिए अलग-अलग है. कालचक्र अनन्त काल से और अनन्त काल तक अपनी ही गति से चलता आया है और अपनी ही गति से चलता चला जाएगा पर हमारे लिए वह हमारी अनुभूतियों के साथ-साथ बहता है. कभी वक़्त के पंख लग जाया करते हैं और कभी वह अंगद का पाँव बन जाता

है, हिलने का नाम ही नहीं लेता. वास्तव में देखा जाए तो समय को किसी से क्या लेना-देना. हम ही उसे अपनी-अपनी अनुभूतिस्वरूप अर्थ सौंपते हैं; कभी आनंद-उल्लास के, तो कभी दर्द के आँसुओं के.'

'धरा! एक बात और समझकर गाँठ बाँध लो....दूसरे की चोट और अपना घाव एक जैसा पीड़ादायी नहीं होता. अन्तर तो होता ही है. पर-दु:ख व स्व-दु:ख की अनुभूतियों की गहराई एक ही मापदंड से न नापो.'
'धरा! तुम तो बस जागृति की इस दीप-शिखा से अपने साथ-साथ दूसरों का आँगन भी आलोकित करो. हाथ पर हाथ धरे बैठने से कुछ न होगा. एच.आई.वी. पॉज़िटिव का, विशेष रूप से एड्स के रोग के साथ 'स्टिग्मा' जुड़े होने के कारण तुम्हारे ही जैसी और भी औरतें इस द्विविधा से बाहर नही निकल पा रही हैं. औरतें ही क्यों, आदमी भी इस गरल को चुपचाप कण्ठ के नीचे उतार रहे हैं. पर हममें से कोई भी शिव नहीं जो इसे कण्ठ तक ही सीमित रख सके. जीवन-मृत्यु के झूले में झूलते ऐसे अनेक हैं जो साँप-छछूँदर की स्थिति में हैं जिनसे न निगला जाता है और ना ही उगला जाता है. हमें ऐसों को एकत्रित करना है. हमें उनका व उनको आपस में एक-दूसरे का सहारा बनना है. एक-दूसरे से सीखना है. हर वो इंसान जो ककून की तरह अपनी ही खोली में बंद इस यंत्रणा को भुगत रहा है, उसके खोल से उसे बाहर निकाल यह बताना है कि वह अकेला नहीं है. इस लड़ाई में सभी भागीदार हैं, जो भुगत रहे हैं वो भी और जो अभी तक इसके पंजों से बचे हुए हैं, वो भी. यह रोग जात-पात, देश, रंग, लिंग किसी में भी भेद-भाव नहीं करता, जिस किसी को भी धर दबोचता है. अत: इस भीषण रोग के निदान के साथ ही साथ हमें इसके संक्रमण से बचने की शिक्षा और साधन भी चाहिए ताकि हम इसकी गति अवरुद्ध कर इस पर बाँध लगा सकें. इसे एक उन्मत्त उफनती नदी जो कूल-कगारों को तोड़ अबाध बह रही है, की भाँति बहने देना कितना ख़तरनाक है, इसका हमें जन-जन को ज्ञान कराना ही होगा.'

'एच.आई.वी. और एड्स के प्रति समाज की अज्ञानता न केवल इनके रोगियों के लिए असहनीय है, यह आगे आने वाली पीढ़ी के लिए भी असहनीय होगा. अगर इस समस्या पर हमने राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सब रूपों से प्रहार नहीं किया, इस पर अंकुश नहीं लगाया तो यह रोग निरंकुश, उन्मत्त हाथी की भाँति बिन भेद-भाव किए सबको ही रौंदता चला जाएगा.'

वसुधा की बोलते-बोलते साँस चढ़ आई थी पर फिर भी वह रुकी नहीं बोलती ही गई, 'नो बॉडी डिजर्व्स टू बी सिक. लोग कहते हैं कि तुमने ऐसा किया होगा इसीलिए ऐसा हुआ. वस्तुत: उनके विचार से, यू डिड दिस सो यू आस्क्ड फॉर इट, वाली उनकी इस युक्ति के खंडन में पहली बात तो यह है कि कोई भी इस रोग को जान-बूझ कर वरदान में नहीं माँगता. और यदि ऐसे लोगों की धारणा मान भी ली जाए कि, यू डिड दिस सो यू आस्क्ड फॉर इट, तुमने ऐसा करके ही तो इसे निमंत्रण दिया है, तो भी ये लोग यह कैसे भूल जाते हैं कि इस रोग की अनगिनत रोगी संख्या हर हाल में बेकसूर है. उन बच्चों का क्या दोष है जो संक्रमणित माँ से पैदा हुए हैं? ना जाने कितनी माएँ ऐसी होंगी जिन्हें यह पता ही नहीं कि वे इस संक्रमण से पीड़ित हैं. धरा तुम्हारे जैसे कितने स्त्री-पुरुष होंगे जिनकी झोली में ब्लड-ट्रांसफ्यूज़न से यह नामुराद रोग बिना माँगे आ गिरा.

"समाज में जागरूकता की अलख जगानी ही पड़ेगी कि यह रोग सबका है किसी विशेष का नहीं. जागरूकता ही निरोध की प्रथम श्रेणी है."

'तुम ठीक कह रही हो वसुधा दीदी. एड्स और एच.आई.वी. के बारे में अज्ञानता के अंधकार से उपजी गलत धारणाएँ बदलनी ही होंगी. लोगों के तसव्वुर में एड्स का चेहरा तो है कि जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती जाएगी रोगी कि तंदुरुस्ती गिरती जाएगी, पर यह नहीं जानते कि एच.आई.वी. के लोग दस, बारह, पंद्रह सालों तक जीवन बिता सकते हैं. अगर वो अपनी सेहत का ध्यान रखें और यह न बताएँ कि वे एच.आई.वी. पॉज़िटिव हैं तो किसी को पता भी नहीं चलेगा. समाज में उपेक्षा के डर से बहुत-से लोग इस बीमारी को छुपा लेते हैं. यह बात व्यक्ति विशेष और समाज दोनों के लिए ही हानिकारक है. अत: इसे झाड़-पोंछकर दरी के नीचे छिपाने की

जगह इस पर यथोचित चर्चा कर समाधान निकाला जाए तो बेहतर है. इस रोग के प्रति अज्ञानता के कारण भी अत्यधिक भय उत्पन्न हुआ है. यह कहना अनुचित न होगा कि इस वॉयरस से भी ज़्यादा तीव्र गति से यदि कुछ फैल रहा है तो वह भय है.'

'यहाँ तक कि मेडिकल संस्थाओं में भी इस रोग के प्रति काफी अज्ञानता है. जब अनामिका का बुखार तेज हुआ और उसे अस्पताल में दाखिल करना पड़ा तो उसे वहाँ के स्टाफ का अपने प्रति व्यवहार देख कर बड़ा ताज्जुब हुआ. उसके बताने पर कि वह एच.आई.वी. पॉज़िटिव है, वहाँ का स्टाफ उसके कमरे में सिर्फ़ घुसने के लिए भी अपने बचाव के लिए कुछ इस तरह दस्ताने, मास्क आदि पहन कर घुसते थे जिसकी कि कतई भी आवश्यकता नहीं थी. यद्यपि रोग के प्रति शिक्षा के अभाव से ही वो शायद ऐसा करते हैं, पर यह प्रकरण रोगी के लिए अत्यंत दु:खदायी है.

'यह जानने पर कि शिखा एच.आई.वी. पॉज़िटिव है, डॉक्टर व स्टाफ डिलीवरी टेबल पर ही उसे छोड़ भाग खड़े हुए. सहृदयता, सौजन्यता, सहनशीलता आदि डॉक्टरों के अद्वितीय गुण तो जाने ही दीजिए, मेडिकल व्यवसाय की मरीज़ की जीवन रक्षा हेतु खाई मूल कसम भी न जाने कहाँ कपूर की तरह उड़ गई. हालाँकि अब हेल्थ-प्रोफैशनल्स इस दिशा में प्रशिक्षित किए जा रहे हैं पर रोग के प्रवाह को देखते हुए गति धीमी है.'

'तभी तो कहती हूँ कि इस धीमी गति को प्रवाह देने में हम सब को प्रयत्नशील होना पड़ेगा. किसी एक विशेषवर्ग पर इस समस्या को थोप हम निश्चिंत नहीं बैठ सकते.' वसुधा ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'समाज का हर अंग इस समस्या के प्रति कटि-बद्ध हो कर्मण्य होगा तभी हम वैतरणी पार कर सकेंगे. अभी तक तो विशेष स्थानों को छोड़कर इसका इलाज़ भी सब जगह प्राप्त नहीं है. यहाँ तक कि इस रोग सम्बन्धी सूचनाएँ, जानकारियाँ, विस्तृत वर्णन आदि भी सहजता से, सुगमता से उपलब्ध नहीं है. उसके लिए भी लम्बी-चौड़ी खोज़ करनी पड़ती है. हेल्थ-प्रोफैशनल्स की व्याख्याओं के अलावा भी आपको बहुत कुछ पढ़ना पड़ता है, देखना-सुनना पड़ता है, शरीर की गतिविधियाँ जाननी पड़ती हैं. अत: हमें एकजुट होना ही पड़ेगा.'

'रोगियों के अनुभव, वैज्ञानिकों की रिसर्च, हेल्थ-प्रोफैशनल्स का अनुसंधानों को कार्यान्वित करना, समाज का रोगियों के प्रति यथोचित व्यवहार, सबके सहयोग की समग्रता ही इस ताले की कुंजी है.'

'पश्चिम देशों का समाज इस क्षेत्र में आगे बढ़ गया है. उन्होंने इस बीमारी को स्वीकार कर हमसे ज़्यादा जन-जागृति लाई है. वहाँ के बच्चों की शिक्षा में भी इसका समायोग है. उनकी यह मान्यता है कि शिक्षा एड्स के उपचार का एक महत्वपूर्ण अंग है, बेहतरीन औषधि है, निरोध का अकाट्य शस्त्र है. वास्तव में, सचमुच ही यह तथ्य विचारने योग्य है. आपको सोचने पर मज़बूर करता है. इसकी सत्यता को झुठलाना उचित न होगा. सामाजिक तत्त्वों को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा का उद्देश्य छोटे-मोटे इश्तहार प्रदर्शन से कहीं ज़्यादा सारगर्भित है. इसका मतलब न केवल उन पर्सनल स्किल्स, स्वगुणों को विकसित करना है जो संक्रमण के निरोधात्मक तत्त्व हैं वरन् इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना, इलाज़ सम्बन्धी जानकारी होना, स्वयं की केयर, देखभाल में सक्रिय योगदान, सारांश में स्वयं की पूर्णरूपेण देखभाल है. अत: सामाजिक सहयोग और हेल्थ-प्रमोशन के महत्वपूर्ण साधन व सामूहिक शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है. सबके अनुभव, उनका आदान-प्रदान, उनकी व्याख्या और नई 'स्ट्रैटजी' का निर्माण, विचार-विमर्श की संरचना करना आदि सब कुछ ही शिक्षा के अन्तर्गत आ जाता है. वार्तालाप, विवेचना से सोचने-समझने के दृष्टिकोण बदल जाते हैं. कुछ अनुभव द्वारा और कुछ विचारों में तुलनात्मक दृष्टिकोण का समावेश हो जाता है. अत: हम एक-दूसरे के साथ जीवन और मृत्यु दोनों में ही एकता, शक्ति एवं आशा से जुड़ें.'

'भारतीय समाज में आम जनता द्वारा इस रोग को नकारने के कारण तथा सेक्स, समलिंगी सेक्स व आई.वी. ड्रग्स के प्रयोग पर सामन्यात: चर्चा न करने के कारण और साथ ही कुछ हद तक लोगों की बिना गम्भीरता से सोचे-विचारे पक्षपाती निर्णयात्मक मान्यताएँ, छींटाकशी की प्रवृत्ति आदि के कारण बड़े पैमाने पर यह मुद्दा अछूता ही रह जाता है. समाज इस प्रसंग को इस तरह रफ़ा-दफ़ा कर देता है जैसे इसका अस्तित्व ही न हो. जबकि वास्तव में इसका अस्तित्व एक छोटे-से पोखर से बढ़ कर एक मदमाती नदी की भाँति हो गया है जिसे यदि बाँधा न गया तो यह कुछ ही वर्षों के अंतराल में समुद्र की गहराइयों में परिवर्तित हो जाएगा.'

'वसुधा दीदी! वक़्त की अँधेरी गुफा में आपके ख़्याल ही मुझे कंदील का एहसास कराते हैं. हाथ बढ़ा कर एक-दूसरे से जुड़ना सचमुच ही एक अद्‌भुत भावना है. यह जानकारी ही कि तूफ़ानों से जूझने के लिए इस नाव में मैं अकेली नहीं हूँ, मुझे बहुत आत्मशक्ति प्रदान करती है.'

धरा आगे बोली, 'सच वसुधा दीदी! यह जानने के बाद कि मैं एच.आई.वी. पॉज़िटिव हूँ, मेरे जीवन की धारा ही बदल गई. ज़िन्दगी की जिन बातों को नामाकूल समझ नज़र अंदाज़ कर दिया था अब वही बातें, वरन् यूँ कहिए कि ज़िन्दगी का हरएक लम्हा अपना ही नज़रिया रखता है. इस दौरान मैंने बहुत कुछ सीखा है और सीखने का यह स्त्रोत जब तक जीवित रहूँगी तब तक नहीं सूखेगा. यद्यपि कि अब मैं दूर भविष्य की नहीं सोचती बस सिर्फ़ आज का, अभी का, वर्तमान का पल जीती हूँ. मैं भी अब यह आवश्यकता महसूस करने लगी हूँ कि लोगों को बताऊँ कि यह एड्स है. मैं कोई काल्पनिक चरित्र नहीं वरन् एक सामान्य नारी हूँ. रोज़-मर्रा की भीड़ का ही एक चेहरा हूँ. वसुधा दीदी! तुमने मुझमें इतनी चाहत, इतना साहस जगा दिया है कि अब मैं भी इस रोग से सम्पूर्णत: विमुक्त होना चाहती हूँ. मैं ठीक होना चाहती हूँ व अपना सारा जीवन इस रोग से पीड़ित लोगों की मदद करने में बिताना चाहती हूँ. मैं अब स्वयं लम्बा जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ जिससे दूसरों को लम्बा जीवन व्यतीत करने में मदद कर सकूँ. हमें एक-दूसरे के लिए हाथ बढ़ाना है जिससे हम एक-दूसरे की सहायता कर सकें. एड्स और एच.आई.वी. की दुनिया काल्पनिक धारणा नहीं है. जरा-सा उचककर अपने इर्द-गिर्द ही देख लो तो मिल जाएगी.'

'रेवती को शादी से पहले तो क्या शादी के बाद भी यह पता न चला था कि उसके पति गजेन्द्र को एड्स है. यह तो बच्ची के जन्म के बाद जब गजेन्द्र की तबियत ज़्यादा खराब रहने लगी तब उसे इस बात का पता चला. उस अभागिन के सर पर एक और पहाड़ तब टूटा जब नादान बच्ची और वह दोनों ही टेस्ट में एच.आई.वी. पॉज़िटिव प्रमाणित हुए. गजेन्द्र के माँ-बाप ने गजेन्द्र के भटकते कदमों को रोकने के लिए, नकेल बाँधने के लिए, दो और जीवों को बलिवेदी पर चढ़ा दिया. पति के जिस शौक की रोक-थाम के लिए उसकी माँग में सिंदूर भरा गया था वह ज़्यादा दिन सिंदूर न बना रहा, वह तो माँग के बीच में एक ऐसा प्रज्ज्वलित अंगारा बन गया जो कसूरवार और बेकसूर में अन्तर न कर, सबको अपने लक्षण से भस्मीभूत करना ही जानता है. रेवती की लाल सिंदूरी माँग खून से लथपथ लपलपाती जीभ बन चुकी थी.' कहते हुए धरा का गला भर आया.

'वसुधा दीदी! न जाने कितने बेकसूर लोग इसका शिकार बन रहे हैं. बेचारा सीधा-सदा राहुल व उसकी पत्नी तृप्ति भी इसकी लपेट में आ गए हैं. राहुल हीमोफ़िलिएक है अत: उसे नियमानुसार लगातार साइरोप्रैसीपिटेट का ट्रांसफ्यूजन या ऐसे वो तत्त्व जिनमें यह भरपूर मात्रा में है और जिसकी कि हीमोफ़िलिएक लोगों के खून में कमी है, लेना पड़ता है. अत: वह व उसके जैसे लोग सदा ही लगातार ब्लड-बैंक की दया पर निर्भर हैं, आश्रित हैं. राहुल जब बीमार रहने लगा तब पता चला कि उसे एड्स हो गया है. यही नहीं तृप्ति भी इसकी चपेट में आ गई है. राहुल के अंदर इस संक्रमण ने संस्थान द्वारा निर्मित ब्लड के जरिये ही प्रवेश किया है क्योंकि संस्थान के 'ब्लड-सैम्पल' की जाँच करने पर यह प्रमाणित हो गया है कि उसमें वायरस उपस्थित है. यद्यपि कि संस्था बंद हो गई तथापि राहुल, तृप्ति और उन जैसे न जाने कितने अभागों के लिए जीवन दूभर हो

गया है. राहुल के माता-पिता तो बिन रोग के ही दिन-ब-दिन मर रहे हैं. एक तो लड़के-बहू का गम, ऊपर से राहुल के पिता के दोस्त जिन्हें शिक्षित वर्ग में रखा जाता है, उनसे हाथ मिलाने से भी कतराते हैं. उनकी माँ पर लोग प्रश्नों की चाबुक-छड़ी लगाते हैं यह जानने के लिए कि क्या वे भी अपने बेटे-बहू की तरह पॉज़िटिव हैं या नहीं? यहाँ तक कि जब राहुल और तृप्ति अपने नियमित चेक-अप के लिए जाते हैं तो उन्हें डॉक्टर के पास नहीं वरन् दूर कमरे के एक कोने में बैठाया जाता है.'

'हाँ धरा! न जाने कितनों के हृदय पर इससे चोटें आई हैं. देखे-अनदेखे स्वप्न बिखरे हैं. रंगीले स्वप्नों की जगह आँखों की पलकों के अंदर काँच की किरक उसे लहूलुहान कर रही है....' कहते हुए वसुधा न जाने किस लोक में पहुँच कर खो गई.

कुछ समय बाद धरा ने ही वसुधा को ठोस धरती पर लाते हुए झिझकते हुए एक प्रश्न पूछा, 'क्या दिव्या जी आपकी निकट संबंधी थीं?'

वसुधा एक पल के लिए अचकचा गई. अचानक अपनी ओर आए इस प्रश्न-बाण ने अंतस को बींध उसके मानसिक विचरण में बाधा डाली और वस्तुस्थिति समझ वह पुन: वर्तमान में आ गई, 'हाँ! सगी भी कह सकती हो और नहीं भी. खून का रिश्ता नहीं था पर मित्रता के रिश्ते की डोर पतंग के उस माँजे की तरह पक्की हो गई थी जिसे बार-बार सान पर चढ़ाया गया हो. जिस पर हर बार स्नेह की लुगदी, माँझा का लेप लगा-लगाकर पुख़्ता किया गया हो. मैं उनसे पहली बार तब मिली थी जब मैं उनका साक्षात्कार लेने गई थी. वे स्पष्टवादी थीं. ज्ञान के क्षेत्र में भी कम नहीं थीं. मेरे हर प्रश्नों का जवाब करीने से देती थीं. रिसर्च के लिए किया गया यह साक्षात्कार कब ज्ञान-जिज्ञासा-पिपासा की सीमाओं को तोड़ मुझे दिव्या से भावनात्मक स्तर पर जोड़ गया, पता ही न चला. वे मेरी ज़िंदगी में धूमकेतु की तरह आती रहीं. दिव्या ने ही मुझे बच्चे की तरह उँगली थाम, इस रोग की जानकारी के पथ पर कदम-दर-कदम बढ़ाया है. उन्होंने ही मुझे सिखाया कि, पीपुल गेट एड्स नॉट दि अदर वे राउंड.'

'दुर्भाग्यवश हम इसे दिव्या के दृष्टिकोण से नहीं देख रहे हैं. हममें से बहुतों के लिए एड्स बस एक चार्ट ही है जो समय-समय पर 'अपडेट' क्रामांकित होता रहता है. यहाँ तक कि वो चेहरे भी जो इस रोग से जुड़े हुए हैं, उनसे ताल्लुक रखते हैं, उन्हें भी हम देखना नहीं चाहते और ना ही उनके साथ दिखना चाहते हैं या उनसे कोई सम्पर्क ही रखना चाहते हैं. वेश्याएँ, तथाकथित नीची जात, छोटे कर्म करने वाले, समलिंगी सेक्स वाले, इंट्रावीनस ड्रग्स व्यसनी, इन सबको हमने एड्स के घड़े में डालकर, उस पर ढक्कन लगाकर, उसका मुँह बंद करके रख दिया है. हमारी मानवता इतनी गिर गई है, हमारी मानसिकता इतनी विकृत हो गई है कि हम अपनी समझ में उन हतभाग्य, नीच, दुरात्मा, नराधम, नफ़रत के क़ाबिल लोगों से दामन झाड़-पोंछ, झटक कर एक किनारे खड़े होने में पूर्णरूपेण तर्कसंगत हैं. अपनी सुविधानुसार हमारा मस्तिष्क अनेकानेक बहाने बनाने में बहुत ही निपुण है. यथास्थिति को पहचानने से इंकार करने के कारण ही हमारा इस रोग को नकारने का अनुपात इतना ऊपर है और चेतना, जागृति की स्थिति की श्रेणी इतनी नीचे. दिव्या से मिलने से पहले मैं भी अपनी समझ से ऐसे ही मुँहजले लोगों को एड्स के घेरे में रखती थी. मैं भी स्वयं के ही पक्षपात से, अन्यायपूर्ण धारणाओं से अंधी थी. मैंने दिव्या से ही सीखा कि नो बॉडी डिजर्व्स टु डाई ऑफ एड्स. दिव्या ने ही अपने दिव्य-चक्षुओं से मुझे एहसास करवाया कि यह बीमारी पक्षपात नहीं करती. यह तो एक क्रूर शिकारी की भाँति जाल फेंकती है, उसमें चाहे छोटी मछली फँस जाए चाहे बड़ी. जब एड्स का जाल अपनी विस्तृतता में फैलेगा तो ज़रूरी नहीं कि केवल वो बेकसूर अभागे जिन्हें हम मुँहजलों की संज्ञा प्रदान कर उनका बहिष्कार कर बैठे हैं, इस रोग से पीड़ित हो दारुण अवस्था में छटपटाएँगे वरन् उनमें से कई लोग मेरे और तुम्हारे जैसे मुँहजले व वो

व्यक्ति जिन्हें हम जानते हैं, जिन्हें उच्च समाज का, शिक्षित समाज का, सभ्य समाज का अंग माना जाता है, ख़िताब दिया जाता है, भी होंगे और शायद तब हम अपने पक्षपात का काला पर्दा उठाना शुरू करेंगे.'

वसुधा का करुणार्द्र स्वर धरा को भीतर तक भिगो गया. वसुधा दीदी! कई बार समाज पर रोष उभरता है. एड्स के बारे में इतनी बातें होने पर भी हम उसकी अवज्ञा क्यों कर रहे हैं? हम कुछ सीखना क्यों नहीं चाहते? क्यों हम पुरातनपंथी की तरह पुरानी धारणाओं से चिपके हैं? लगता है जैसे इतिहास के पाँव में कील ठोंक दी गई है. हम कहीं कुछ भी नहीं बदलना चाहते. ज़िंदगी लम्हा-लम्हा रीत रही है और ऐसे ही एक दिन ज़िंदगी के सारे पृष्ठ उलट जाएँगे. हम सभी वक़्त की नदी के कगार पर खड़े पेड़ हैं. हर पल उम्र की ज़मीन कट रही है. अत: अब मैंने भी सोच लिया है कि अब मैं भी एक भी लम्हा बर्बाद नहीं करूँगी. इस लड़ाई में मैं आपके साथ हूँ. अगर ज़िंदगी की लड़ाई हार भी गई तो भी इसमें मेरी जीत ही है. अगर अपने नहीं तो कम से कम किसी और के काम तो आऊँगी ही. अत: उस हार का मुझे ग़म न होगा. हार भी कभी-कभी जीत से भी सुखद होता है. बीज जब दफ़न होता है, अपने को मिटा देता है तभी ज़मी के ऊपर कोई कोंपल टुक-से अपनी आँख खोलती है. एक बीज नष्ट होकर ही अपने बीजांकुर से एक महावृक्ष, अनेक बीज और अनेकानेक फलों को जन्म देता है. अत: अगर मैं इस लड़ाई में दफ़न भी हो गई तो भी इस दफ़न होने का मुझे कोई ग़म न होगा. अपनी यात्रा का यह सिला भी मुझे ख़ुशी-ख़ुशी मंज़ूर है.'

"वसुधा दीदी! बस तुम हिम्मत न हारना. जिस रणक्षेत्र में हम उतरे हैं अब उससे पीछे नहीं हटेंगे. उसे पीठ नहीं दिखाएँगे. हमारा कार्यक्षेत्र निश्चित है. मैंने निराशा को त्याग कर, उस ओर लौटने के सारे दरवाज़े बंद कर दिए हैं. मैं निराशा की उस लकीर को लाँघ गई हूँ जो मुझे बार-बार लाँघने से पहले ही अपने में समेट लेती थी. तुम देखना जल्दी ही इसमें हमारे जैसे और लोग भी काँधे से काँधा मिलाने आ जाएँगे.'

वसुधा भाव-विह्वल हो बोली, 'धरा! तुम्हारी इस वाणी में सरस्वती का वास हो. ईश्वर करे ऐसा ही हो. दिव्या ने वर्षों तिल-तिल घुट-घुटकर, संघर्ष कर, जो पगडंडी बनाई है उससे आगे का रास्ता तो हमें ही बनाना है. आज वो नहीं है, लेकिन फिर भी वो है, जैसे क्षितिज नहीं होकर भी होता है वैसे ही उसका पार्थिव अस्तित्व न होकर भी मानसिक अस्तित्व तो है ही.'

वसुधा ने धरा की हथेली अपनी मुट्ठी में जकड़ ली. स्पर्श की अपनी ही भाषा होती है, वह जुबाँ की भाषा की मोहताज़ नहीं होती है.

धरा और वसुधा के हाथों की उँगलियों ने एक-दूसरे में अटक कर एक मुट्ठी का रूप धारण कर लिया था जो अलग-अलग अशक्त थीं पर मुट्ठी में बँधकर एक-दूसरे को सम्बल प्रदान करती हुईं सशक्त बन गई हैं.

हर कोई है चाहता

कुमार सत्यम

हर कोई है चाहता, धरमों का विस्तार
मानवता का ही धरम, यहाँ नहीं स्वीकार
यहाँ नहीं स्वीकार, लड़ें झाँसे में आकर
नेता करते राज, धरम-भजनों को गाकर
समय की है पुकार, उठे जनता सब सोई
मानवता का पाठ, करे मिलकर हर कोई.

तुम पर कोई गीत लिखूँ....

धीरज श्रीवास्तव

बहुत दिनों से सोच रहा हूँ तुम पर कोई गीत लिखूँ!
अन्तर्मन के कोरे कागज पर तुमको मनमीत लिखूँ!

लिख दूँ कैसे नजर तुम्हारी दिल के पार उतरती है!
और कामना कैसे मेरी तुमको देख सँवरती है!

पंछी जैसे चहक रहे इस मन की सच्ची प्रीत लिखूँ!
बहुत दिनों से सोच रहा हूँ तुम पर कोई गीत लिखूँ!

लिख दूँ हवा महकती क्यों है, क्यों सागर लहराता है?
जब खुलते हैं केश तुम्हारे क्यों तम ये गहराता है?

शरद चाँदनी क्यों तपती है, क्यों बदली ये रीत लिखूँ!
बहुत दिनों से सोच रहा हूँ तुम पर कोई गीत लिखूँ!

प्राण कहाँ पर बसते मेरे, जग कैसे ये चलता है?
किसका रंग खिला फूलों पर, कौन मधुप बन छलता है?

एक-एक कर सब लिख डालूँ अंतर का संगीत लिखूँ!
बहुत दिनों से सोच रहा हूँ तुम पर कोई गीत लिखूँ!

इन नयनों के युद्ध क्षेत्र में तुमसे मैं हारा कैसे?
जीवन का सर्वस्व तुम्हीं पर मैंने यूँ वारा कैसे?

आज पराजय लिख दूँ अपनी और तुम्हारी जीत लिखूँ!
बहुत दिनों से सोच रहा हूँ तुम पर कोई गीत लिखूँ!

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

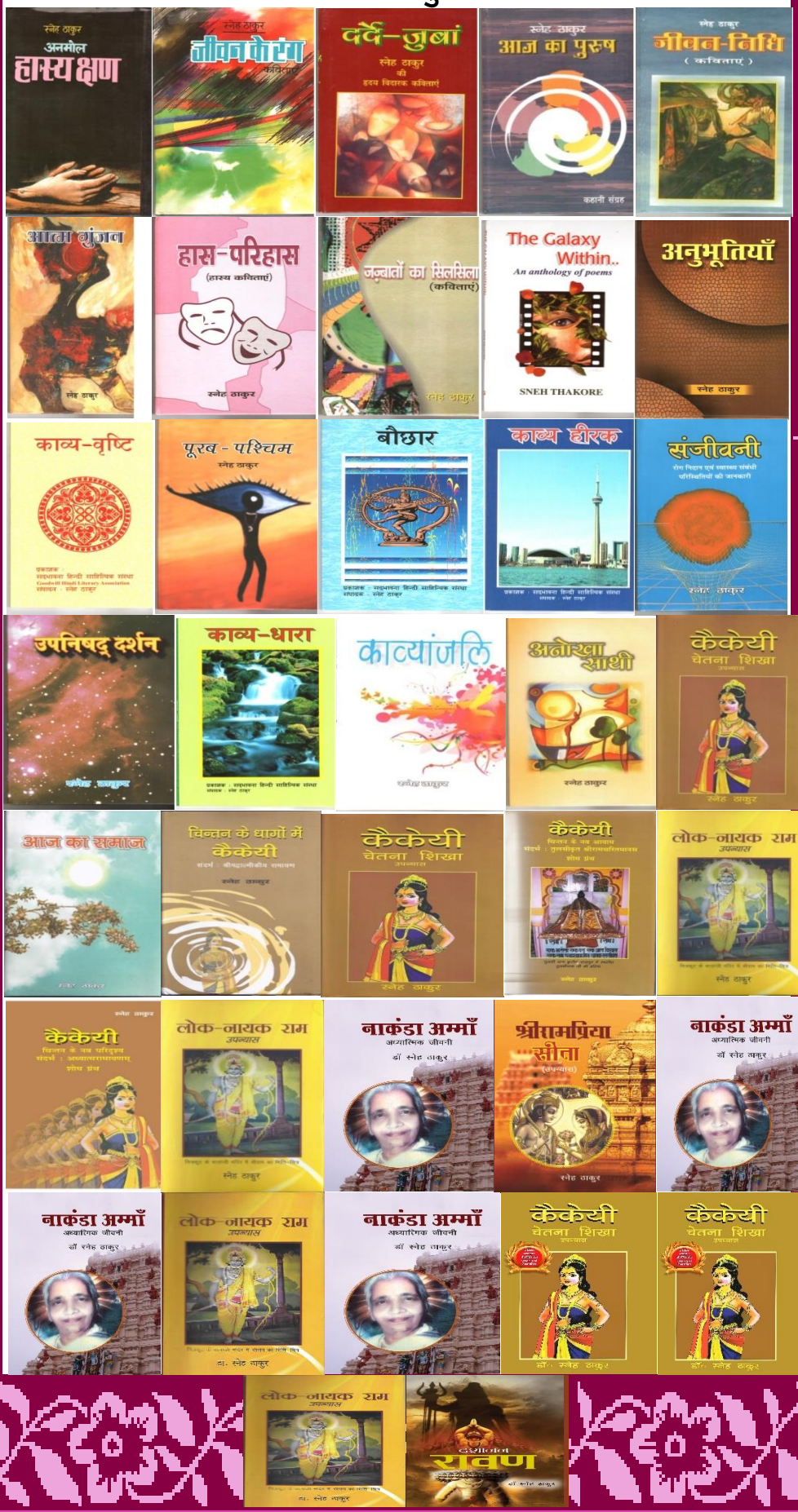

डॉ .स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण	(उपन्यास)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्मा	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, संपादन एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित